* अथ *

ज्येष्ठमासमाहात्म्यम्

* भाषाटीकया सहितम् *



श्रीगणेशाय नमः

* अथ ज्येष्ठमासमाहात्म्यं प्रारभ्यते *

ऋषि लोग स्कन्दजी से बोले कि हे षडानन ! हमलोगों ने विस्तार पूर्वक वैशाखमास का माहात्म्य भी सुना, परन्तु फिर भी मन को तृप्ति न हुई ॥१॥ इसलिये सबको सन्तुष्ट कर देने वाला ज्येष्ठ मास के माहात्म्य को कृपा कर आप कहिये, जिसके द्वारा श्रोताओं के पाप का नाश हो। इस ज्येष्ठ मास के देवता कौन हैं, इसके सेवन से फल क्या

ऋषय ऊचुः ॥ श्रुतं माधवमासस्य माहात्म्यमपि विस्तृतम् ॥ तथापि मनसस्तृप्तिं न गच्छाम षडानन ॥ १ ॥ अतस्त्वं कृपया ब्रूहि सर्वसंतोषकारकम् ॥ माहात्म्यं ज्येष्ठमासस्य शृण्वतां पापनाशनम् ॥ को देवः किं फलं दानं को विधिः कथयस्व नः ॥ २ ॥ स्कन्द उवाच ॥ साधु साधु महाभागाः पृष्टं लोकोपकारकम् ॥ माहात्म्यं शक्रमासस्य कथयामि यथा तथा ॥ ३ ॥ विष्णुर्वै

होता है और इसके सेवन की विधि क्या है ? यह सब हमलोगों से कहिये ॥ २ ॥ स्कन्दजी ऋषियों से बोले कि हे महाभाग ! ठीक है, आपलोगों ने लोकोपकार के लिये उचित प्रश्न किया है। मैं ज्येष्ठ मास के माहात्म्य को कहता हूँ ॥३॥ जिस तरह समस्त देवताओं में विष्णु भगवान् बड़े हैं, प्रशंसनीय हैं और प्रजाओं के पालनकर्ता हैं उसी तरह

यह ज्येष्ठ मास समस्त मासों में श्रेष्ठतम (अति श्रेष्ठ) कहा है ॥ ४ ॥ जिस ज्येष्ठ मास के समस्त दिवस श्रेष्ठ है और
पव के समान हैं, इसलिये यह मास समस्त लोकों में श्रेष्ठ कहा जाता है ॥ ५ ॥ इस ज्येष्ठ मास मे शौच आचार से
युक्त होकर प्रातःकाल स्नान करना चाहिये । इस तरह दशाश्वमेध तीर्थ मे स्नान करने से गङ्गा लोकों को पवित्र
करती है ॥ ६ ॥ समस्त पापों के नाश के लिये ज्येष्ठ मास मे स्नान करे और दशाश्वमेधेश्वर का दर्शन करे तो उस

सर्वदेवानां ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ॥ तथाऽयं सर्वमासानां ज्येष्ठः श्रेष्ठतमः स्मृतः ॥ ४ ॥ सर्वेऽपि
वासरा यस्य श्रेष्ठा वै पर्वसदृशाः ॥ अतः सर्वेषु लोकेषु श्रेष्ठो मासोऽभिधीयते ॥ ५ ॥ प्रातः
स्नानं तदा कार्यं शौचाचारसमन्वितः ॥ दशाश्वमेधिके तीर्थे गङ्गा लोकान् विमृज्यते ॥ ६ ॥
स्नानं ज्येष्ठे हि कर्तव्यं सर्वपापप्रशान्तये ॥ दृष्ट्वा दशाश्वमेधेशं पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ७ ॥ तत्र
पुण्यतमा ज्ञेया दिवसा वृषसंमिताः ॥ यत्रावतीर्णा सुस्रोता जाह्नवी दुरितापहा ॥ ८ ॥ तत्रापि
पुण्यदाऽत्यर्थं दशमी दशपापहा ॥ तत्र स्नानानि दानानि कर्तव्यानि न संशयः ॥ ९ ॥ उदकु-

स्नानकर्ता का पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ७ ॥ उस ज्येष्ठ मास के दिवस पुण्यतम और धर्मयुक्त हैं, जिस ज्येष्ठ मास में
पापनाशिनी सुन्दर स्रोतवाहिनी जाह्नवी अवतीर्ण हुई ॥ ८ ॥ ज्येष्ठ मास के समस्त तिथियों में अधिक पुण्यप्रद दशमी
तिथि दशविध पापों का शमन करनेवाली है, उस दिन स्नान और दान अवश्य करना चाहिये ॥९॥ जलपूर्ण घटदान,

जलदान (पौसरा), तालपत्र (व्यजन) दान, चन्दन दान, छत्रदान, और जूतादान श्रीत्रिविक्रम भगवान् के प्रीत्यर्थ करना चाहिये ॥ १० ॥ जूतादान का मन्त्र—हे केशव ! कण्टक, शर्करा आदि से रक्षा के निमित्त जूतादान करूँगा जो कि सब स्थानों मे सुख देने वाला है, इसलिये जूतादान से आप मुझे शान्ति प्रदान करें ॥ ११ ॥ छत्रदान का मन्त्र—हे केशव ! हे प्रभो ! इस लोक और परलोक में घाम से मेरी रक्षा करें, हे प्रभो ! यह छत्र आपके प्रीत्यर्थ मैंने आपके

म्भाम्बुदानं च तालवृन्तं सचन्दनम् ॥ त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थ छत्रं चोपानहं तथा ॥ १० ॥ उपानहौ प्रदास्यामि कण्टकादिनिवारणे ॥ सर्वस्थानेषु सुखदे अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ११ ॥ इहामुत्रातपत्राणं कुरु मे केशव प्रभो ॥ छत्रं त्वत्प्रीतये दत्तं ब्राह्मणाय मया तव ॥ १२ ॥ एष कुम्भो मया दत्तः शर्कराजलपूरितः ॥ प्रदानादस्य तृप्यन्तु त्रयस्त्रिंशत्तु देवताः ॥ १३ ॥ घर्मशान्तिकरं नित्यं व्यजनं विष्णुवल्लभम् ॥ त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थ भूसुराय ददाम्यहम् ॥ १४ ॥ चन्दनं रुचिरं

प्रिय ब्राह्मण को दिया ॥ १२ ॥ शर्करा जल से पूर्ण घटदान का मन्त्र—मैंने शर्करा जल से पूर्ण घट का दान दिया है, इस शर्बत से पूर्ण घटदान से तैंतीस (३३) तिथि के देवता तृप्त होवें ॥ १३ ॥ व्यजन दान का मन्त्र—हमेशा घर्म को शमन करने वाला, श्री विष्णु भगवान् का प्रिय व्यजन श्रीत्रिविक्रम भगवान् के प्रीत्यर्थ मैं भूसुर (ब्राह्मण) को देता हूँ ॥ १४ ॥ चन्दन दान का मन्त्र—यह कपूर खश से युक्त चन्दन सुन्दर रुचिकर है इसका मैं दान करता

चारु कर्पूरोशीरसंयुतम् ॥ अस्य प्रदानात्तृप्यन्तु देवर्षिपितृमानवाः ॥१५॥ एवं दानानि बहुशो दातव्यानि स्वशक्तितः ॥ अनिवारिजलं देयं भूतेभ्यो जलवर्जिते ॥ १६ ॥ तदशक्तो द्विजाग्यस्य जलदानं दिने दिने ॥ अश्वत्थवटवृक्षादीन् सिञ्चन् बहुविधैर्जलैः ॥१७॥ जलदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जलदानं विधीयते ॥ १८ ॥ जलदानं तु ये मोहान्न कुर्वन्ति शुचौ नराः ॥ ते भुक्त्वा निरयान् घोरान् भवन्ति भुवि चातकाः ॥ ११ ॥ अत्र ते कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ पुरा त्रेतायुगस्यान्ते माहिष्मत्यां द्विजोत्तमः ॥ २० ॥ सुम-

है, इसके दान से देवता ऋषि पितर मनुष्य तृप्त होवें ॥ १५ ॥ इस तरह अपने शक्ति के अनुसार बहुत से दानों को देना चाहिये। और प्राणिमात्र के लिये निर्जल देश में जलदान (पौसरा) देना चाहिये ॥ १६ ॥ जो प्राणिमात्र के लिये जलदान (पौसरा) देने मे असमर्थ है वह ब्राह्मण के लिये प्रतिदिन जलदान करे। और पीपल वट आदि वृक्षों का अनेकविध जल से सिञ्चन करे ॥ १७ ॥ जलदान से श्रेष्ठ दान न हुआ न होगा, इसलिये सब उपाय से जलदान का विधान किया है ॥ १८ ॥ जो मनुष्य ज्येष्ठ मास में मोहवश जलदान को नहीं करते हैं, वे लोग घोर नरकों की यातना को भोगकर पुनः पृथिवी पर चातक (पपीहा) होते हैं ॥ १६ ॥ इस विषय में पुरातन इतिहास को मैं आपसे कहूँगा। पूर्वकाल त्रेतायुग के अन्त में माहिष्मती पुरी मे ब्राह्मण श्रेष्ठ ॥ २० ॥ वेद वेदाङ्ग का पारङ्गत

धर्मात्मा सुमन्तु नामक ब्राह्मण हुआ। उस ब्राह्मण की गुणमती नामक स्त्री और देवशर्मा नामक पुत्र था ॥ २१ ॥ ब्राह्मणपुत्र देवशर्मा हमेशा देवतापूजन में निरत और अभ्यागत (अतिथि) प्रिय था। किसी समय दैवयोग से समिधा को लाने के लिये वन को गया ॥२२॥ वहाँ प्रतप्त तेज किरणों के लगने से और तृषा से अत्यन्त व्याकुल हो गया। उस वन के जलराशि (तालाव) के समीप जाकर वृक्ष की छाया मे बैठकर ॥२३॥ जल पीकर जल के समीप बैठकर

न्तुर्नाम धर्मात्मा वेदवेदाङ्गपारगः ॥ तस्य भार्या गुणमती देवशर्मा सुतस्तथा ॥ २१ ॥ देवा-
र्चानिरतो नित्यं सर्वदाऽभ्यागतप्रियः ॥ कदाचिद्दैवयोगेन समिधार्थं वनं गतः ॥ २२ ॥ प्रतप्त-
चण्डकिरणैस्तृषा व्याकुलितो बहु ॥ वृक्षच्छायां समाश्रित्य जलराशिसमीपगः ॥ २३ ॥ पीत्वा
जलं समाविष्टो सुष्वाप जलसन्निधौ ॥ तद्भयात्तद्वनस्था ये मृगपक्षिगणादयः ॥ २४ ॥ तृषार्ता
व्याकुलीभूताः केऽपि पञ्चत्वमागताः ॥ विनिद्रः स्वगृहं यातो गतेऽस्तं तिग्मतेजसि ॥ २५ ॥

सो गया, उस ब्राह्मण के भय से उस वन के जो मृग और पक्षिगण आदि थे ॥ २४ ॥ वे सब तृषा से पीड़ित होकर व्याकुल हो गये और उनमें से कुछ मर भी गये। सूर्यनारायण के अस्ताचल चले जाने पर जब निद्रा दूर हुई तब वह ब्राह्मण अपने गृह को गया ॥ २५ ॥ जब अज्ञात दोष से युक्त वह ब्राह्मण मर गया तब उसके साथ उसकी पतिव्रता

स्त्री ने पुत्र धन आदि का त्याग कर अग्नि में प्रवेश किया ॥२६॥ ब्राह्मण वन में हुए अज्ञात कर्म दोष के फल से अनेक नरकों को भोगकर पुनः इस लोक मे स्त्री के साथ चातक योनि में आकर अत्यन्त दुखी हो गया ॥ २७ ॥ पूर्वजन्म के पाप को स्मरण करता हुआ अपने गृह में आकर और अपने वृक्ष के खोड़रा मे बैठकर निरन्तर करुणापूर्वक रोदन

अज्ञातदोषलिप्ताङ्गो पञ्चत्वमगमद्द्विजः ॥ सती विवेश दहनं त्यक्त्वा पुत्रधनादिकम् ॥ २६ ॥
तेन कर्मविपाकेन भुक्त्वा च नरकान् वहून् ॥ चातकीं योनिमासाद्य कान्तया दुःखितो भृशम्॥२७॥
स्मरन् पूर्वभवं पापमागतः स्वगृहे तदा ॥ स्वीयवृक्षं समाश्रित्य करुणं रोदतेऽनिशम् ॥ २८ ॥
श्रुत्वा पुत्रेण वहुशो वारितोऽपि न निर्गतः ॥ कोपाविष्टेन पुत्रेण दग्धं तस्य च कोटरम् ॥ २९ ॥
दग्धपक्षौ तदा तौ तु वृक्षाधः पतितौ निशि ॥ जल्पतुश्च मिथः कष्टं श्रुत्वा पुत्रोऽपि विस्मितः॥३०॥
प्राजगामाश्रमं पुण्यं गत्वाऽपृच्छद्द्विजाग्रणीन् ॥ निष्कृतिं स्वपितुर्ज्ञात्वा ययौ स निजमन्दिरम् ॥

करने लगा ॥ २८ ॥ उसके क्रन्दन को सुनकर उसके पुत्र ने अनेक बार मना किया परन्तु वह उस वृक्ष के खोड़रा से नहीं निकला । तब क्रुद्ध पुत्र ने उस वृक्ष के कोटर (खोड़रा) में आग लगा दी ॥ २९ ॥ उस अग्नि के ताप से दोनों (चातक चातकी) के पक्ष जल गये और वे दोनों रात्रि मे उस वृक्ष के नीचे जमीन पर गिर गये तथा परस्पर कष्ट को कहने लगे, इनके परस्पर कष्ट की बात को सुनकर पुत्र भी विस्मित हो गया ॥३०॥ और वहाँ से आकर पवित्र आश्रम

में जाकर उसने ब्राह्मणश्रेष्ठों से पूछा। और उन ब्राह्मणों से अपने पिता के उद्धार का साधन जानकर वह अपने गृह को गया ॥ ३१ ॥ उस ऋषिश्रेष्ठ ने विधिपूर्वक निर्जल देश में प्रपा (पौसरा) को बैठा दिया और उस प्रपा के पुण्य प्रभाव से उसके माता पिता चातक योनि से छूटकर दिव्य रूप होकर ॥ ३२ ॥ श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर विष्णु-भगवान् के धाम को गये। हे विप्र लोग ! मैंने पूर्व का वृत्तान्त आप लोगों से कहा ॥ ३३ ॥ जो कि जल-मार्ग के

॥ ३१ ॥ प्रपां कृत्वा विधानेन निर्जले ऋषिसत्तमः ॥ तेन पुण्यप्रभावेण दिव्यरूपधरौ तदा ॥ ३२ ॥ विमानवरमारूढौ वैष्णवं धाम चागतौ ॥ इति ते कथितो विप्रा वृत्तान्तः पूर्वसम्भवः ॥३३॥ जलावरोधदानस्य महिमा कथितोऽद्भुतः ॥ ३४ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमास-माहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अवरोध के बाद जलदान का अद्भुत महिमा वर्णित है ॥ ३४ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



स्कन्द जी ऋषियों से बोले कि हे ऋषि लोग ! ज्येष्ठ मास में देवताओं के संतुष्टि के निमित्त प्रतिदिन ब्राह्मणों को विशेषरूप से दही चावल का दान देना चाहिये ॥१॥ दही चावल दान के माहात्म्य को कहने में अहिभूधर (शिवजी) भी असमर्थ हैं फिर भी लोक के निश्चयार्थ मैं कुछ कहता हूँ ॥ २ ॥ हे विप्रलोग ! अलका पुरी में गौतम नाम का एक ब्राह्मण रहता था वह वेद धर्मशास्त्र और पुराणों का ज्ञाता तथा द्रव्य हीन और अत्यन्त दुखी था ॥३॥ उसने

स्कन्द उवाच ॥ ज्येष्ठे मासे विशेषेण ब्राह्मणेभ्यो दिने दिने ॥ दध्योदनं प्रदातव्यं देवानां तुष्टिहेतवे ॥ १ ॥ दधिभक्तस्य माहात्म्यं वक्तुं नेशोऽहिभूधरः ॥ तथा विवक्ष्यते किञ्चिल्लोकप्रत्ययहेतवे ॥ २ ॥ अलकायां पुरा विप्रा विप्रोऽभूद्गौतमोऽभिधः ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञो द्रव्यहीनः सुदुःखितः ॥ ३ ॥ कुटुम्बपोषणोद्विग्नः कृत्वा कर्माणि सर्वशः ॥ गृहीत्वा सर्वदानानि विचार्य शुभमाशुभम् ॥ ४ ॥ ततो दस्युभिः संगम्य चौर्यवृत्तिमथाकरोत् ॥ नच लेभे धनं किञ्चित्ततो देशान्तरं गतः ॥ ५ ॥ त्यक्त्वा कुटुम्बं सकलं पापबुद्धिः क्षुधातुरः ॥ बलिदानैः

कुटुम्ब के पालन पोषण के निमित्त घबड़ाकर समस्त कर्मों को किया और शुभ अशुभ फल जानकर भी समस्त दानों को लिया ॥ ४ ॥ तदनन्तर चोरों का साथ कर चोरी की जीविका भी किया परन्तु फिर भी जब उसे कुछ धन न मिला तब वह दूसरे देश को चला गया ॥५॥ और समस्त कुटुम्ब का त्याग कर वह पापबुद्धि ब्राह्मण क्षुधा से आतुर

होकर बलि में दिये गये और प्रेत पिण्ड के अन्न से जीविका करने लगा ॥६॥ इस तरह श्मशान मे बलि खाने वालोंके साथ रहकर बलि भोजन करता हुआ समस्त कर्मों से रहित हो गया ॥ ७ ॥ और शक्ति हीन, जरा (वृद्धावस्था) से जीर्ण तथा क्षीणायु हो गया। ज्येष्ठ मास के आने पर दही भात खाने वाले ब्राह्मणों के ॥८॥ भोजन करने पर उच्छिष्ट पात्रों को तथा समस्त बलिदानों को लेकर उसके अन्न को वायस (पक्षियों) और काकों को कौतुकवश ॥९॥ जल सहित

प्रेतपिण्डैर्वृत्तिं स निरवर्तयत् ॥ ६ ॥ एवं द्वादशवर्षाणि बलिभुक् पितृकानने ॥ वसन्

बलिभुजैः साकं सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ७ ॥ क्षीणशक्तिरभूत्सोऽथ जराव्याप्तो गतायुषः ॥

ज्येष्ठे मासे तु सम्प्राप्ते दधिभक्तभुजद्विजाम् ॥ ८ ॥ गृहीत्वोच्छिष्टपात्राणि बलिदानानि सर्वतः ॥

तदन्नं वायसेभ्यश्च काकेभ्यश्च सलीलया ॥ ९ ॥ सोदकं दत्तवान् विप्रो स्वयं भुञ्जन्निजेच्छया ॥

एवं तेन कृतो विप्राः शुक्रे मासि न बुद्धितः ॥ १० ॥ तेन पुण्यप्रभावेण पञ्चत्वमगमद्द्विजः ॥

यमदूतैः समागम्य बद्धः पाशेन तत्क्षणात् ॥ ११ ॥ नीयमाने क्रन्दमानस्ताडितो मुद्गरैर्भृशम् ॥

देकर उस ब्राह्मण ने स्वेच्छा से स्वयं भी भोजन किया। हे ब्राह्मण लोग! इस तरह उसने ज्येष्ठ मास में बलिदान किया किन्तु जानकर नहीं किया ॥ १० ॥ जब इस पुण्यकर्म के बाद उसकी मृत्यु हुई तब यमदूतों ने आकर उसी क्षण में उसको पाश से बाँध दिया ॥ ११ ॥ और जब उसे यमलोक को ले जाने लगे तब वह क्रन्दन करने लगा। उसके क्रन्दन करने पर यमदूतों ने मुद्गरों से बहुत मारा। हे राजन्! इसी बीच मे विष्णु भगवान् के दूत वहाँ आ गये

॥१२॥ विमान पर सवार उन विष्णुदूतों ने आकर यमदूतों को अलग हटा दिया और दिव्यदेह धारी उस ब्राह्मण को विमान पर बैठाकर स्वर्ग को ले गये ॥ १३ ॥ यमदूत-लोग उस ब्राह्मण के समाचार को कहने के लिये यमराज के पास गये और यम से कहा कि हे प्रभो ! जब हम लोग उस ब्राह्मण को लेने के लिये समीप गये ॥ १४ ॥ तब वहाँ विष्णुगणों ने आकर हमलोगों को बहुत पीटा । क्योंकि वे लोग स्वामी से युक्त है और हमलोग नाथहीन हैं इसलिये

एतस्मिन् समये राजन् विष्णुदूताः समागताः ॥ १२ ॥ विमानवरमारूढा यमदूतान् न्यवारयन् ॥
दिव्यदेहधरं विप्रं कृत्वा निन्युर्दिवं गणाः ॥ १३ ॥ यमदूता गता नाथं यज्जातं तन्निवेदितुम् ॥
यदा वयं चोपयाता आनेतुं द्विजबन्धुजम् ॥ १४ ॥ तत्र विष्णुगणैरेत्य तैर्हता वयमुत्कटम् ॥
सनाथास्ते वयं नाथहीनाः किं करवामहे ॥ १५ ॥ अलं त्वत्सेवनेनात्र यामोऽन्यं स्वामिनं
विभुम् ॥ इति दूतवचः श्रुत्वा चुक्षुभे हृदि धर्मराट् ॥ १६ ॥ आरुह्य महिषं तूर्णं ययौ दण्डधरः
क्षणात् ॥ दण्डेन ताडिताः सर्वे दूता विष्णुसमा अपि ॥ १७ ॥ त्यक्त्वा विमानं ते सर्वे पेलुर्याता

अब हमलोग क्या करें ॥ १५ ॥ आज से आपकी सेवा न करेंगे, दूसरे व्यापक स्वामी के पास हमलोग जाते हैं। दूतों के इस वचन को सुनकर धर्मराज हृदय से क्षुब्ध हो गये ॥ १६ ॥ और शीघ्र भैंसा पर सवार होकर क्षणमात्र मे वहाँ पहुँच कर दण्डधारी यमराज ने विष्णु के समान भी उन दूतों को दण्ड से ताड़ित किया ॥ १७ ॥ वे सब

विष्णुदूत विमान को छोड़कर चले गये और उन्होंने रमापति विष्णु के पास जाकर सब समाचार निवेदन किया। समाचार सुनकर विष्णु भगवान् क्रोध से रक्तवर्ण हो गये ॥१८॥ और पक्षिराज (गरुड़) पर सवार होकर यमलोक को गये। इन्द्रादि समस्त देवताओं को साथ मे लेकर विष्णु भगवान् ने यमराज से युद्ध किया ॥ १६ ॥ देवता लोग यमदण्ड से अत्यन्त पीटे जाने पर दश दिशाओं मे चले गये, उस समय क्रुद्ध होकर विष्णु ने चक्र से यमराज का

रमापतिम् ॥ निवेद्य सकलं वृत्तं विष्णुः कोपारुणोऽभवत् ॥ १८ ॥ पक्षिराजं समारुह्य यमलोकं जगाम सः ॥ युयुधे प्रेतराजेन सेन्द्रैर्देवगणैः सह ॥ १६ ॥ यमदण्डेन निहता देवा याता दिशो दश ॥ ततः कोपेन विभुना चक्रेण निहतो यमः ॥ २० ॥ ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा विष्णुं स्तोतुं ययुः सुराः ॥ स्तुत्या प्रसन्नो भगवान् धर्मराजमजीवयत् ॥ २१ ॥ धर्मोऽपि नत्वा देवेशं क्षम्यतामिति चाब्रवीत् ॥ स्वस्वस्थानं गताः सर्वे ब्रह्मेन्द्रादिपुरोगमाः ॥ २२ ॥ अजनता कृतं यच्च

वध कर दिया ॥ २० ॥ जब देवताओं ने ब्रह्मा को आगे कर विष्णु भगवान् की स्तुति के निमित्त जाकर स्तुति किया, तब स्तुति से प्रसन्न-होकर विष्णु ने यमराज को जीवित कर दिया ॥ २१ ॥ धर्मराज ने भी उस समय देवेश विष्णु को प्रणाम कर कहा कि हे विष्णो! अपराध को क्षमा करें। तदनन्तर ब्रह्मा इन्द्र आदि समस्त देवता अपने अपने स्थान को चले गये ॥ २२ ॥ हे अनघ! अज्ञानवश ब्राह्मण ने जो दही चावल का दान किया, उसका प्रभाव वर्णन किया।

यदि जानकर दान करता है तो कहना ही क्या है ॥ २३ ॥ इसलिये सब उपाय से प्रतिदिन दान देना चाहिये। और मार्ग में थके हुए द्विजातियों को दही चावल भोजन के निमित्त देना ॥ २४ ॥ तथा ज्येष्ठ मास मे प्रतिदिन पैर धोना चाहिये ॥ २५ ॥ और ब्राह्मणश्रेष्ठों का सुगन्ध चन्दन से पूजन करे। तथा सुगन्ध पुष्पमाला विविध प्रकार के पानक (आम का पन्ना, मठा, सर्वत) आदि से सत्कार करे ॥ २६ ॥ और स्वयं सुगन्ध युक्त व्यजन (पङ्खा) से

दानं दध्योदनस्य च ॥ तस्य प्रभावः कथितो किं पुनर्ज्ञानतोऽनघ ॥ २३ ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दानं दद्याद्दिने दिने ॥ पथि श्रान्तद्विजातिभ्यो दद्याद्वै दधिभोजनम् ॥ २४ ॥ पादप्रक्षालनं कार्यं तस्मिन्मासे दिने दिने ॥ सुगन्धचन्दनैश्चापि अर्चयेद्द्विजपुङ्गवान् ॥ २५ ॥ सुगन्धपुष्पमालाभिः पानकैर्विविधैस्तथा ॥ सुगन्धिकैश्च व्यजनैर्वीजयेत् स्वयमेव च ॥ २६ ॥ एवं ये कुर्वते विप्रास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥ २७ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हवा करे। हे ब्राह्मण लोग ! इस प्रकार जो ज्येष्ठ मास में स्नान दान पूजन आदि करते है वे लोग परम गति के भागी होते है ॥ २७ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



स्कन्द जी बोले कि हे मुनि लोग ! समस्त पापों का नाश करने वाला ज्येष्ठ मास के दिनो का माहात्म्य और सम्पूर्ण जल दान का माहात्म्य आप सब लोग श्रवण करे ॥ १ ॥ ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपत् से लेकर ज्येष्ठ शुक्ल दशमी पर्यन्त पवित्र दशहरा नामक व्रत करना चाहिये ॥ २ ॥ प्रतिदिन गङ्गाजी के पवित्र जल में स्नान करना चाहिये । समस्त तीर्थों के अभाव मे जो भी जल मिले वह सब गङ्गाजल के समान जल कहा है ॥ ३ ॥ इन दश

स्कन्द उवाच ॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे सर्वपापहरं शुभम् ॥ ज्येष्ठस्य दिनमाहात्म्यं पयसश्च यथातथम् ॥ १ ॥ प्रतिपद्दिनमारभ्य या शुक्ला दशमी भवेत् ॥ तावद्व्रतं प्रकर्तव्यं पुण्यं दशहराभिधम् ॥ २ ॥ स्नानं प्रतिदिनं कार्यं गङ्गायाः सलिले शुभे ॥ अभावे सर्वतीर्थेषु सर्वं गङ्गासमं जलम् ॥ ३ ॥ मुच्यते दशभिः पापैः शतजन्मार्जितैरपि ॥ महापापानि पञ्चैव तथा पञ्च लघूनि च ॥ ॥ ४ ॥ एवं दशविधैः पापैर्मुक्तो भवति नान्यथा ॥ तत्र दानान्यनेकानि दत्तान्यक्षयतां व्रजेत् ॥५॥ तथा शुक्लद्वितीयायामपराह्णे द्विजोत्तमाः ॥ समानो नाम विख्यातो कल्पः प्राविरभूत् किल ॥६॥

दिनों मे जो स्नान करता है वह शतजन्म के अर्जित दशविध पापों से मुक्त हो जाता है । दशविध पापों मे पाँच महापाप और पाँच लघु पाप हैं ॥ ४ ॥ इस तरह दशविध पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है । इन दिनों में अनेक दानों को देना चाहिये, वे दिये गये सब दान अक्षय हो जाते हैं ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मण लोग ! ज्येष्ठ

शुक्लपक्ष की द्वितीया के दिन अपराह्ण समय मे प्रसिद्ध समान नामक कल्प प्रारम्भ हुआ ॥ ६ ॥ उस द्वितीया के दिन समान नामक कल्प मे स्नान दान श्राद्ध ब्राह्मणभोजन कर्म को विष्णु भगवान् के निमित्त भक्ति से जो करते हैं उनको कोटि गुणा अधिक पुण्य होता है ॥ ७ ॥ और ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया के दिन पञ्चाग्निसाधन नामक व्रत आरम्भ होता है। पञ्चाग्निसाधन व्रत एक मास तक करने से समस्त पापों से छूट जाता है ॥ ८ ॥ और तेज में सूर्य के समान

तत्र स्नानं च दानं च श्राद्धं च द्विजतर्पणम् ॥ विष्णुमुद्दिश्य यैर्भक्त्या कृतं कोटिगुणं भवेत् ॥७॥
तथा शुक्लतृतीयायां पञ्चाग्निसाधनं व्रतम् ॥ कृतं चेन्मासमात्रे तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥
तेजसा सूर्यसंकाशो जायते नात्र संशयः ॥ अस्यामेव विशेषेण कार्यं रम्भाव्रतं शुभम् ॥ ९ ॥
सधवाविधवाभिर्वा स्त्रीभिः सौभाग्यसिद्धये ॥ अस्यामेव द्विजश्रेष्ठाः कल्पोऽभूद्वामनस्य च ॥ १० ॥
दधिभक्तप्रदानेन तुष्टो भवति वामनः ॥ श्राद्धं कुर्याद्विधानेन तर्पणं द्विजभोजनम् ॥ ११ ॥

होता है इसमे संशय नहीं है। इसी तृतीया के दिन विशेष रूप से पवित्र रम्भाव्रत करना चाहिये ॥ ९ ॥ सधवा या विधवा सभी स्त्रियाँ इस व्रत को सौभाग्य सिद्धि के लिये कर। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इसी तृतीया के दिन वामन कल्प का प्रारम्भ हुआ ॥ १० ॥ इसलिये तृतीया के दिन दही चावल का दान करने से वामन भगवान् सन्तुष्ट होते है और विधि से श्राद्ध, तर्पण, ब्राह्मणभोजन कर्म को करे ॥ ११ ॥ तथा एक मास तक ब्राह्मणों को दही का भोजन करावे

और शुक्ल चतुर्थी के दिन कपिल ऋषि के पवित्र आश्रम म ॥ १२ ॥ कुण्ड से चार भुजाधारी विनायक (गणेश जी) देव प्रकट हुए। इसलिये चतुर्थी के दिन भोजन न करे और सब लोग गणेशजी का महोत्सव करें ॥ १३ ॥ पञ्चमी के दिन घृतपक्व अपूप (मालपुआ) आदि ब्राह्मणों को भोजन करावे। पहिले इसी शुक्ल चतुर्थी के दिन सती उमा प्रकट हुईं ॥ १४ ॥ इसलिये चतुर्थी के दिन स्त्रियाँ सौभाग्यवृद्धि के लिये उमा (पार्वती) का विविध उपचारों से

तथैव मासपर्यन्तं द्विजेभ्यो दधिभोजनम् ॥ तथा शुक्लचतुर्थ्यां तु कपिलस्याश्रमे शुभे ॥ १२ ॥
कुण्डादाविरभूद्देवश्चतुर्बाहुर्विनायकः ॥ अतस्तस्यां न भुञ्जीत सर्वैः कार्यो महोत्सवः ॥ १३ ॥
पञ्चम्यां भोजयेद्विप्रान्नपूपैर्घृतपाचितैः ॥ अस्यां शुक्लचतुर्थ्यां तु जाता पूर्वं उमा सती ॥ १४ ॥
तस्मात् सा तत्र सम्पूज्या स्त्रीभिः सौभाग्यवृद्धये ॥ उपचारैश्च विविधैर्गीतनृत्योत्सवादिभिः ॥१५॥
होमैः पयोभिर्वस्त्रैश्च तत्र पुष्पैः सुगन्धिभिः ॥ उमां सम्पूजयेत् षष्ठ्यां स्त्रीभिः सन्तानकांक्षिभिः
॥ १६ ॥ सप्तम्यां ज्येष्ठमासस्य ज्येष्ठान्ते नार्चयन्ति ये ॥ तत्रैव वासो ज्येष्ठाया भविष्यति न

पूजन करे। और गीत (गाना) नृत्य (नाच) आदि उत्सव करें ॥ १५ ॥ सन्तान की इच्छा हो तो शुक्ल षष्ठी के दिन स्त्रियाँ जल वस्त्र पुष्प सुगन्ध वस्तु हवन आदि के द्वारा उमा (पार्वती) का पूजन करें ॥ १६ ॥ ज्येष्ठ शुक्ल सप्तमी के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त में जो उमा का पूजन नहीं करते हैं उनके यहाँ ज्येष्ठा (दरिद्रा देवी) का वास

होता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १७ ॥ इसलिये दरिद्रा से भयभीत मनुष्यों को सप्तमी के दिन उमा का पूजन और दशमी के दिन अपने विभव विस्तार के अनुसार गङ्गाजी का पूजन करना चाहिये ॥ १८ ॥ जिस कारण लोकपावनी गङ्गा दशमी के दिन स्वर्ग से अवतीर्ण हुई अतः १०,११, १२ इन तीन दिन से एकादशी का व्रत साध्य कहा है ॥ १९ ॥ एकादशी का व्रत समस्त पापों का नाशक है इसका व्रत निर्जल उपवास करने से सिद्ध होता है। और त्रयोदशी से लेकर

संशयः ॥ १७ ॥ अतस्तां तत्र सम्पूज्य नरैर्दारिद्र्यभीरुभिः ॥ दशम्यां पूजयेद्गङ्गां यथाविभवसम्भवैः ॥ १८ ॥ अवतीर्णा यतः स्वर्गाद्दशम्यां लोकपावनी ॥ ततस्त्रिभिरहोभिश्च साध्यमेकादशीव्रतम् ॥ १९ ॥ निर्जलत्वमुपोष्यैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ त्रयोदशीं समारभ्य पौर्णिमान्तं महाव्रतम् ॥ २० ॥ सावित्रीति च विख्यातं स्त्रीणां सौभाग्यदायकम् ॥ संसिञ्च वटमूलानि ब्रह्माणं रविनन्दनम् ॥ २१ ॥ सत्यव्रतं च सावित्रीं पूजयेद्वटसन्निधौ ॥ एवं दिनत्रयं कार्यं निद्राहारविवर्जितम् ॥ २२ ॥ एवं कृष्णेऽपि कर्तव्यं पारणं प्रतिपद्दिने ॥ नित्यं स्त्रीभिः सदा

पौर्णमासी पर्यन्त तीन दिन का जो उत्तम व्रत कहा है ॥२०॥ यह व्रत सावित्री नाम से प्रसिद्ध स्त्रियों के सौभाग्य को देनेवाला है। उन दिनों मे वटवृक्ष के मूलभाग का जल से सिञ्चन करे और वटवृक्ष के समीप ब्रह्मा, यमराज ॥२१॥ सत्यव्रत और सावित्री का पूजन करे। इस तरह निद्रा आहार (भोजन) का त्याग कर तीन दिन व्रत करे ॥ २२ ॥

इसी तरह कृष्णपक्ष में भी तीन दिन का व्रत करके प्रतिपत् के दिन पारण करे। यह नित्य व्रत है, स्त्रियाँ इस व्रत को सदा करें, यह श्रेष्ठ व्रत एक वर्ष करने से सिद्ध होता है ॥२३॥ ज्येष्ठ मास की पौर्णमासी ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त हो तो वह कोटि शत पर्व से भी श्रेष्ठ है, उस ज्येष्ठी पौर्णमासी के दिन अनेक दानों को देवे। मैं उन दानों को संक्षेप में कहता हूँ ॥ २४ ॥ हे तपोधन लोग! ज्येष्ठी पौर्णमासी के दिन कूर्मकल्प आरम्भ हुआ, इसलिये उस दिन स्नान दान तर्पण

कार्यं वर्षसाध्यं तथा परम् ॥ २३ ॥ ज्येष्ठी ज्येष्ठयुता चेत्स्यात् कोटिपर्वशताधिका ॥ तस्यां दानानि देयानि कथयामि समासतः ॥ २४ ॥ यथा यस्यां समभवत् कूर्मकल्पस्तपोधनाः ॥ तत्र स्नानं च दानं च तर्पणं द्विजभोजनम् ॥ २५ ॥ पितॄनुद्दिश्य कुर्वन्ति ते यान्ति परमं पदम् ॥ यस्यां मन्वन्तरारम्भः कृतादौ चैव भूसुराः ॥२६॥ तस्माच्छ्राद्धं च दानं च पितॄणां तृप्तिदायकम्॥ एवं व्रतानि बहुशो मासेऽस्मिन् देवपूजिते ॥२७॥ इति भविष्ये ज्येष्ठमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

ब्राह्मणभोजन ॥ २५ ॥ पितरों के उद्देश से जो लोग करते हैं वे लोग परमपद को जाते है। हे भूसुर (पृथिवी के देवता)! सत्युग के आरम्भ में जिस ज्येष्ठी पौर्णमासी के दिन मन्वन्तर कल्प आरम्भ हुआ ॥ २६ ॥ इसलिये उस दिन श्राद्ध दान करना पितरों को तृप्तिदायक कहा है। इस तरह देवताओं से पूजित इस ज्येष्ठ मास में बहुत से व्रत कहे हैं ॥ २७ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसाद-व्यासेन कृतायां भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ऋषिलोग स्कन्दजी से बोले कि हे स्कन्दजी ! ज्येष्ठमास में विशेष रूप से पञ्चाग्निसाधन नामक व्रत का विधान किया है और इस व्रत को कामुक लोग अच्छी तरह समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिये करें ॥ १ ॥ जिस पञ्चाग्निसाधक व्रत के प्रभाव से गिरिजा (पार्वती) ने शैव पद को प्राप्त किया । हे स्कन्द जी ! जो आपने पञ्चाग्नि नाम से प्रसिद्ध व्रत को कहा उसका पञ्चाग्नि नाम कैसे हुआ ? और किस विधि से इस व्रत को करना चाहिये ? यह

ऋषय ऊचुः ॥ ज्येष्ठे मासि विशेषेण व्रतं पञ्चाग्निसाधनम् ॥ कर्तव्यं कामिभिः कामं सर्वकामार्थसिद्धये ॥ १ ॥ यस्य प्रभावाद्गिरिजा शैवं पदमवाप ह ॥ कथं पञ्चाग्निविख्यातं कथितं तद्व्रतं त्वया ॥ कार्यं केन विधानेन तत्सर्वं कथयस्व नः ॥ २ ॥ स्कन्द उवाच ॥ पुरा रुद्रेण भो विप्राः दग्धः कामः सुखप्रदः ॥ पार्वती दीनवदना शुशोच बहु वासरम् ॥ ३ ॥ पितुर्गृहे कृतावासा लेभे सा न सुखं क्वचित् ॥ ऋषीणामाश्रमाणां च हिमाचलनिवासिनाम् ॥ ४ ॥ पृच्छति

सब आप हमलोगों से कहिये ॥ २ ॥ स्कन्द जी बोले कि हे विप्र लोग ! पूर्व समय में जब रुद्र भगवान् ने सुखप्रद कामदेव को भस्म कर दिया तब दीनवदना पार्वती बहुत दिनों तक शोकाकुल हो गईं ॥ ३ ॥ बाद पिता के गृह में जाकर रहने लगीं परन्तु पार्वती जी को कहीं भी सुख न मिला । उस समय हिमालय के वासी ऋषियों के आश्रमों मे

जाकर ॥ ४ ॥ चित्त की शान्ति के अर्थ काली (पार्वती) जी ने उपाय को पूछा ॥ ५ ॥ इस तरह पार्वती जी के पूछने पर सप्तऋषियों मे भृगु नामक ऋषि बोले कि हे महाभागे ! तुम विधिपूर्वक पञ्चाग्निसाधन नामक व्रत को करो ॥ ६ ॥ पार्वती जी ने कहा कि स्वामिन् ! किस विधान से इस उत्तम व्रत को करना चाहिये ? भृगु ऋषि बोले

स्म तदा काली उपायं चित्तनिर्वृतेः ॥ ५ ॥ ऋषीणां सप्तसंख्यानां भृगुर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥
भृगुरुवाच ॥ पञ्चाग्निसाधनं नाम व्रतं कुरु यथाविधि ॥ ६ ॥ पार्वत्युवाच ॥ स्वामिन् केन प्रकारेण कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ भृगुरुवाच ॥ साधु पृष्टं महाभागे विस्तरात् कथयामि ते ॥ ७ ॥
ज्येष्ठे मासि तृतीयायां प्रभाते विमले जले ॥ स्नात्वा नित्यक्रियां कुर्याच्छुक्लवसा गृहं व्रजेत् ॥
॥ ८ ॥ पुण्याहवाचनं कुर्यात् ब्राह्मणान् पूजयेत्तथा ॥ समित्समिद्धान् चतुरो कृत्वाऽग्नीन् पूज्य

कि हे महाभागे ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया । मैं तुमसे विस्तार से कहता हूँ ॥ ७ ॥ ज्येष्ठमास की तृतीया के दिन प्रातःकाल स्वच्छ जल में स्नानकर नित्यक्रिया को करे और शुक्ल वस्त्र धारण कर गृह को आवे ॥ ८ ॥ घर आकर पुण्याहवाचन कर्म को करे तथा ब्राह्मणों का पूजन करे । समिधाओं से प्रदीप्त चार अग्नि को करके यथाशक्ति

उन अग्नियों का पूजन करे ॥ ९ ॥ और उन अग्नियों के मध्य भाग में बैठकर सूर्यनारायण के तरफ अपनी दृष्टि को रखे तथा जब तक सूर्यनारायण अस्त न होवें तब तक इन्द्रियों को वश मे कर स्थित रहे ॥ १० ॥ इस तरह निराहार जितेन्द्रिय रहकर मासव्रत को करे । भृगु ऋषि के इस वचन को सुनकर सती उमादेवी प्रसन्न हो गईं ॥ ११ ॥ और भृगु ऋषि के कथनानुसार विधि से श्रीशिवजी के प्रसन्नार्थ बारह (१२) वर्ष तक उमा ने इस व्रत को प्रत्येक मास मे

शक्तितः ॥ ९ ॥ तेषां मध्ये स्थितश्चापि सवितारं समीक्षता ॥ यावदस्तमितो भानुस्तावत्तिष्ठे-ज्जितेन्द्रियः ॥ १० ॥ एवं मासव्रतं कुर्यात् निराहारो जितेन्द्रियः ॥ भृग्वर्षेर्गिरमाकर्ण्य संतु-तोष उमा सती ॥ ११ ॥ तेनोक्तेन विधानेन चकार शिवतुष्टये ॥ एवं द्वादशवर्षाणि प्रतिज्येष्ठे शुभानना ॥ १२ ॥ व्रतस्यास्य प्रभावेण शिवो मोहमुपागतः ॥ क्व गता पार्वती चेति विचार्यैवं समाधिना ॥ १३ ॥ ज्ञात्वा तपोवनं तस्या ययौ वनचराकृती ॥ सान्त्वयामास विविधैर्वाक्यैर-मृतसन्निभैः ॥ १४ ॥ तया निर्भर्त्सितः सोऽथ निजरूपं प्रकाशयत् ॥ ततः सा गिरिजा विप्रा

किया ॥ १२ ॥ तथा इस व्रत के प्रभाव से शिवजी भी मुग्ध हो गये और पार्वती जी कहाँ गईं ? इस विचार में पड़कर समाधि के द्वारा उमा देवी का तपोवन में होना निश्चय कर ॥ १३ ॥ स्वयं भी वनचरों का स्वरूप बनाकर उमा देवी के तपोवन को गये तथा विविध प्रकार के अमृत समान वचनों से समझाया ॥ १४ ॥ हे विप्र लोग !

समझाने पर जब पार्वती जी ने वनचर रूपधारी शङ्कर भगवान् को झटकार दिया तब उस समय श्रीशिव जी ने अपने को प्रकट कर दिया। और पार्वती जी ने जब शङ्कर भगवान् को देखा तब लज्जा से शिर नीचा कर लिया ॥१५॥ भगवान् शिव जी ने हर्ष से पार्वती जी को अपने गोद में करके आलिङ्गन किया। इस समाचार के मिलने पर हिमवान् भी श्रीशिवजी के पास आये ॥ १६ ॥ और आकर अनेक विविध उपचारों से पूजन किया । श्रीशिव जी हिमवान्

व्रीडयाऽधोमुखीऽभवत् ॥ १५ ॥ अङ्के कृत्वा तु गिरिजां आलिलिङ्ग मुदा शिवः ॥ हिमवानपि तज्ज्ञात्वा आययौ शिवसन्निधौ ॥ १६ ॥ पूजयामास विविधैरुपचारैरनेकधा ॥ गृहीत्वाऽऽज्ञां हिमवतो तत्तपोवनवासिनाम् ॥ १७ ॥ अर्धाङ्गे गिरिजां कृत्वा ययौ कैलासमात्मनः ॥ इति वः कथितं विप्रा व्रतं पञ्चाग्निसाधनम् ॥ १८ ॥ माहात्म्यं ज्येष्ठमासस्य भूयः किं श्रोतुमिच्छथ ॥ बहुभिश्च कृतं पूर्वं व्रतं सर्वार्थसाधनम् ॥ १९ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं मतम् ॥

तथा उस तपोवन के वासियों की आज्ञा लेकर ॥ १७ ॥ पार्वती जी को अपने अर्धाङ्ग में धारण कर कैलास पर्वत को चले गये। हे विप्र लोग ! मैंने आपलोगों से इस पञ्चाग्नि साधन व्रत को कहा है ॥ १८ ॥ और ज्येष्ठ मास का पुनः क्या माहात्म्य सुनना चाहते है। यह व्रत सभी अर्थों का साधक है पहिले बहुतों ने इस व्रत को किया हैं। तथा यह व्रत धर्म अर्थ काम और मोक्ष का श्रेष्ठ साधक माना गया है ॥ १९ ॥ जो लोग इस व्रत को श्री जगदीश को

तुष्टि तथा पुष्टि के लिये करते हैं वे लोग इस लोक मे विविध प्रकार के समस्त इष्ट काम भोगों को भोग कर अन्त में

कुर्वन्ति ये व्रतमिदं जगदीशतुष्ट्यै पुष्ट्यै च सर्वमनसेप्सितकामभोगान् ॥ ते प्राप्नुवन्ति विविधान् भुवि कामभोगानन्ते व्रजन्ति निलयं परमस्य पुंसः ॥ २० ॥ इति भविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

उस परब्रह्म के उत्तम लोक को जाते है ॥२०॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ऋषि लोग स्कन्दजी से बोले कि हे अगस्त्य जी ! ज्येष्ठ मास मे स्त्रियाँ सौभाग्य के लिये विशेष रूप से कौन सा व्रत और दान करें ? सो आप कृपा कर कहिये ॥ १ ॥ स्कन्द जी बोले कि किसी समय कैलास पर्वत के शिखर पर भगवान् शङ्कर सुख से बैठे थे, पार्वतीजी ने शिवजी को प्रणाम किया और हाथ जोडकर बोलीं ॥ २ ॥ पार्वतीजी ने कहा कि हे शिव ! हे शम्भो ! हे जगन्नाथ ! हे सर्वज्ञ ! हे सुखदायक ! मेरे समान ऐश्वर्य सुख सौभाग्य किसी का

ऋषय ऊचुः ॥ ज्येष्ठे मासि विशेषेण स्त्रीभिः सौभाग्यकांक्षिभिः ॥ किं कर्तव्यं व्रतं दानं कथयस्व प्रसादतः ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ पुरा कैलासशिखरे सुखासीनं महेश्वरम् ॥ प्रणम्य पार्वती देवं बद्धाञ्जलिरभाषत ॥ २ ॥ पार्वत्युवाच ॥ शिव शम्भो जगन्नाथ सर्वज्ञ सुखदायक ॥ ऐश्वर्य सुखसौभाग्यं नास्ति मत्सदृशं क्वचित् ॥ ३ ॥ एतदक्षय्यतामेति येनोपायेन शङ्करः ॥ अजरामरतां चैव त्वया सह कृपानिधे ॥ ४ ॥ सावित्री रूपगर्विष्ठा भर्तुरागारमत्यजत् ॥ गायत्र्या शापिताः सर्वे त्वया सा न निवारिता ॥ ५ ॥ प्राणांस्त्यज त्वं निर्लज्ज अजागलसमां-

नहीं है ॥ ३ ॥ हे शङ्कर ! यह ऐश्वर्य सुख और सौभाग्य जिस उपाय के द्वारा अक्षय (नाश रहित) हो और हे कृपा-निधे ! आपके साथ अजर अमर होकर रहें ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! जब तप से गर्वित होकर सावित्री ने अपने स्वामी का गृह त्यागा और समस्त लोगों को शाप दे दिया उस समय आपने सावित्री को मना नहीं किया ॥ ५ ॥ और वह ब्रह्मा से

बोली कि हे निर्लज्ज ! बकरी के गले में बिना दूध के निरर्थक स्तन के समान तू प्राणों का त्याग कर । इस प्रकार सावित्री के वचन को सुनकर कोप से ब्रह्मा लाल हो गये और बोले कि ॥ ६ ॥ अरे मूढे ! तू पृथिवी पर वृक्ष योनि में होकर वास कर । जब देवताओं ने प्रार्थना किया तब ब्रह्मा ने उस शाप से उद्धार कर दिया ॥ ७ ॥ इसलिये हे कृपासिन्धो ! यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है तो उस उपाय को कहिये । क्योंकि स्वर्ग लोक में महेन्द्र तथा प्रजा-

स्ततः ॥ सावित्र्या वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा जज्वाल कोपतः ॥ ६ ॥ मूढे वृक्षत्वमाप्नोषि बीजेन रहितं भुवि ॥ देवैस्तु प्रार्थितो ब्रह्मा उच्छापं प्रददौ तदा ॥ ७ ॥ तद्वदस्व कृपासिन्धो यदि मे स्यादनुग्रहः ॥ अस्ति नाशो महेन्द्रस्य स्वर्लोके च प्रजापतेः ॥ ८ ॥ शिव उवाच ॥ सर्वेषां दृश्यजातानां नाशमस्ति वरानने ॥ तथापि कथयिष्यामि तव भक्तिवशीकृतः ॥ ९ ॥ भद्रे कुरुष्व यत्नेन रम्भाख्यव्रतमुत्तमम् ॥ ज्येष्ठे मासि तृतीयायां स्नात्वा नियमतत्परा ॥ १० ॥ पार्वत्युवाच ॥ केयं रम्भा कथं तस्या व्रतं कार्यं समाहितैः ॥ शिव उवाच ॥ सावित्री ब्रह्मणा शप्ता जडत्वं रूप-

पति का भी नाश कहा है ॥ ८ ॥ श्री शिवजी बोले कि हे वरानने ! जितने दृश्यमान पदार्थ हैं उन सभों का नाश निश्चित है, फिर भी तुम्हारे भक्ति के वशीभूत होकर मैं उपाय कहूँगा ॥९॥ हे भद्रे ! ज्येष्ठ मास की तृतीया तिथि के दिन स्नान कर नियम में तत्पर रहकर यत्नपूर्वक श्रेष्ठ रम्भाव्रत को करो ॥ १० ॥ पार्वती बोली कि हे प्रभो ! यह

॥१३॥

रम्भा कौन है ? और समाहित चित्त होकर रम्भाव्रत कैसे करना चाहिये ?। शिवजी बोले कि हे वरानने ! जब सावित्री को ब्रह्मा ने शाप दिया तब सावित्री जड़ (वृक्ष) रूप हो गई ॥ ११ ॥ और वही यह रम्भा, कदली और कर्पूर-जननी नाम से प्रसिद्ध हुई । तथा क्रोध से सन्तप्त सावित्री अपने पिता के घर में रहने लगी ॥१२॥ और जब पिता के उपदेश से ज्येष्ठ मास में स्नान पूजन आदि पाँच वर्ष तक किया तब ब्रह्मा प्रसन्न हो गये ॥ १३ ॥ और हे शुभे !

मास्थिता ॥ ११ ॥ सेयं रम्भा च कदली कर्पूरजननीति च ॥ रुषा तप्ता तु सावित्री पितृवेश्मनि संस्थिता ॥ १२ ॥ पित्रोपदिष्टमार्गेण ज्येष्ठे स्नानार्चनादिकम् ॥ चकार पञ्च वर्षाणि ततः प्रीतः पितामहः ॥ १३ ॥ आविर्बभूव तस्याग्रे ज्येष्ठे मातृतिथौ शुभे ॥ वरान् ददौ बहुतरान् शृणुष्व भुवि दुर्लभान् ॥ १४ ॥ रम्भा भव त्वमंशेन लोकानुग्रहहेतवे ॥ येऽर्चयन्ति शुचे मासि परमां त्वां शुचिस्मिते ॥ १५ ॥ तासामक्षय्यतामेति सौभाग्यसुखसम्पदः ॥ सावित्र्या सह ब्रह्माऽथ सत्य-

ज्येष्ठ मास की तृतीया के दिन उस सावित्री के सामने प्रकट होकर ब्रह्मा ने पृथिवी के दुर्लभ बहुत से वरदानों को दिया है उनको तुम सुनो ॥ १४ ॥ ब्रह्मा ने सावित्री से कहा कि हे शुभे ! तुम जगत् के कल्याण के लिये अंश से रम्भा (केला) हो जाओ । हे शुचिस्मिते ! जो ज्येष्ठ मास में तुम्हारा श्रेष्ठ पूजन करेंगी ॥ १५ ॥ उनका सौभाग्य

सुख सम्पदा अक्षय (नाशरहित) होगा । बाद ब्रह्मा सावित्री के साथ सत्यलोक को चले गये ॥ १६ ॥ हे भद्रे ! यह सावित्री के शाप का कारण तुमसे कहा । अब थोड़े में रम्भा व्रत का विधान कहता हूँ ॥१७॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! ज्येष्ठमास की तृतोया के दिन बगीचा या गृह मे अपनी शक्ति के अनुसार कदलो (केला) का वन लगावे ॥ १८ ॥ पञ्चामृत, विविध गन्ध, पुष्पमाला, कर्पूर, पवित्र शीतल खश से वासित जल आदि से ॥१६॥ प्रतिदिन आलवाल

लोकं जगाम ह ॥ १६ ॥ एतत्ते कथितं भद्रे सावित्रीशापकारणम् ॥ रम्भाव्रतविधानं च कथयामि समासतः ॥ १७ ॥ उद्यानेऽपि गृहे वापि स्वशक्त्या कदलीवनम् ॥ वापयेच्च शुचे मासि तृतीयायां द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥ पञ्चामृतैश्च विविधैर्गन्धमाल्यैः सकर्पुरैः ॥ पुण्योदकैः शीतलैश्च तथा चोशीरवासितैः ॥ १६ ॥ सेचनं चालवालादि कारयेच्च दिने दिने ॥ एवं रम्यवनं कृत्वा ब्रह्माणं नाभिसंस्थितम् ॥ २० ॥ सुवर्णनिर्मितं कृत्वा पूजयेत् कलशे स्थितम् ॥ उपचारैः षोडशभिर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ २१ ॥ भोजयेद्ब्राह्मणान् शक्त्या हविष्यं स्वयमेव हि ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैः

(वृक्ष के थाला) में सिञ्चन करे । इस तरह सुन्दर वन को बनाकर उसके नाभि (मध्य) में कलश स्थित करे ॥२०॥ और सुवर्ण की बनी उस ब्रह्मा की प्रतिमा को कलश के ऊपर स्थापित कर षोडशोपचार से पूजन करे, विविध प्रकार का नैवेद्य अर्पण करे ॥ २१ ॥ अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करावे और स्वयं हविष्यान्न भोजन कर

गीत, वाद्य, पुराण श्रवण ॥ २२ ॥ कथा श्रवण (माहात्म्य श्रवण), कीर्तन के द्वारा देवता के सामने जागरण करे। इसी तरह कदलीवन में बैठकर प्रतिदिन पूजन करे ॥ २३ ॥ समस्त कामनाओं की इच्छा करने वाले मनुष्य इस तरह मासव्रत को करें। एक मास पूर्ण होने पर घर वगैरह आचार्य को दे देवे ॥ २४ ॥ और बहुत सा दान देकर दूध देनेवाली गौ का दान देवे। यथाशक्ति हवन कर ब्राह्मणों को भूरिदक्षिणा (भूयसी दक्षिणा) देवे ॥२५॥ और अपनी

पुराणश्रवणादिभिः ॥ २२ ॥ जागरं तत्र कुर्वीत कथाश्रवणकीर्तनैः ॥ एवं प्रतिदिनं कार्यं कद-लीवनसंस्थिता ॥ २३ ॥ इति मासव्रतंकार्यं सर्वकामार्थिभिर्नरैः ॥ पूर्णे मासे तु तत्सर्वमाचार्याय निवेदयेत् ॥ २४ ॥ दत्त्वा दानान्यनेकानि गां च दद्यात पयस्विनीम् ॥ होमं कुर्याद्यथाशक्ति विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणाम् ॥ २५ ॥ स्वशक्त्या भोजयेद्विप्रान् पायसैः शर्करान्वितैः ॥ विसर्ज्य पारणां कुर्यात् प्राणिभ्योऽन्नं ददौ बहु ॥ २६ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं रहस्यं तोषितो पुरा ॥ भद्रे कुरुष्व यत्नेन फलं प्राप्नोषि शाश्वतम् ॥ २७ ॥ एतद्व्रतं किल पुरा जगदीश्वरेण संगोपितं दिनकरा-

शक्ति के अनुसार शर्करायुक्त पायस से ब्राह्मणों को भोजन करावे। बाद विसर्जन कर पारण करे और प्राणियों को बहुत सा अन्न दान देवे ॥ २६ ॥ हे भद्रे ! पहिले तुमने मुझको प्रसन्न किया था इसलिये यह सब रहस्य तुमसे कहा। हे भद्रे ! इस व्रत को यत्नपूर्वक करो, तुमको शाश्वत फल मिलेगा ॥ २७ ॥ प्रथम सूर्यपुत्र के निग्रह से इस व्रत को

जगदीश्वर ने गुप्त रक्खा था उस पवित्र व्रत को जगत् के गुरु शङ्कर भगवान् ने दीनों पर कृपा कर पार्वती जी से

त्मजनिग्रहेण ॥ तच्छम्भुनात्र कथितं गिरिराजपुत्र्यां भावेन दीनकृपया गुरुणाऽखिलस्य ॥ २८ ॥
इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कहा ॥ २८ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसाद-व्यासेन कृतायां भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



पार्वतीजी बोली कि हे प्रभो! इस व्रत को किसी ने किया? और व्रत का पूर्ण फल प्राप्त किया है क्या? वह सब इतिहास के सहित आप मुझसे कहिये ॥१॥ शिवजी बोले कि त्रेतायुग के पूर्ण होने पर कहीं पर धूर्जटि नामक ब्राह्मण हुआ वह द्विजकुल में पूजित, धनी, अनेक बान्धव से युक्त था ॥ २ ॥ परन्तु सन्तान के न होने से दुखी होकर महान्

पार्वत्युवाच ॥ कयाचन व्रतमिदं फलं प्राप्तं यथा तथा ॥ तत्सर्वं सेतिहासेन कथयस्व मम प्रभो ॥ १ ॥ शिव उवाच ॥ त्रेतायुगे क्वचित्पूर्णे धूर्जटिर्नाम नामतः ॥ द्विजो द्विजकुलश्रेष्ठो धनी च बहुबान्धवः ॥ २ ॥ अनपत्यस्तु दुःखार्तो महान् नियममास्थितः ॥ व्रतान्यनेकदानानि चकार विधिपूर्वकम् ॥ ३ ॥ अथ कालेन बहुना जाता कन्याऽतिशोभना ॥ स्वविवाहोचितां कन्यां दृष्ट्वा भार्याममन्त्रयत् ॥ ४ ॥ देया कस्य सुरूपेयं न समो दृश्यते वरः ॥ निर्गतः स्वगृहात्तूर्ण वरान्वेषणतत्परः ॥ ५ ॥ ग्रामात् ग्रामान्तरं गच्छन् पत्तनानि बहून्यपि ॥ मण्डलानि

नियम में स्थित होकर उसने विधिपूर्वक अनेक व्रत तथा दानों को किया ॥ ३ ॥ इस तरह व्रत करते बहुत समय के बाद एक मनोहर कन्या पैदा हुई। विवाहयोग्य कन्या को देखकर ब्राह्मण स्त्री से विचार करने लगा कि ॥ ४ ॥ हे शोभने! इस सुन्दर कन्या को किसे दें, इसके समान वर देखने में नहीं आ रहा है ॥ ५ ॥ यह कहकर वर खोजने

के निमित्त गृह से शीघ्र निकल कर एक ग्राम के बाद दूसरे ग्राम मे तथा बहुत से नगरो में जाने के बाद ॥ ६ ॥ राजाओं के मण्डल मे गया। अनेक क्षेत्रों मे भी जाकर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ को जब कन्या के योग्य वर न मिला ॥ ७ ॥ तब शुद्धात्मा ऋषियों के सुन्दर तपोवन में जाकर अन्वेषण किया। तदनन्तर कौशिक ऋषि के आश्रम में ब्राह्मणश्रेष्ठ को देखा ॥ ८ ॥ उस ब्राह्मण का शिवशर्मा नाम था और वह माता पिता से हीन था। उसका दूसरा प्रसिद्ध

नृपाणां च क्षेत्राणि विविधानि च ॥ ६ ॥ नापश्यत् कन्यकायोग्यं वरं स द्विजपुङ्गवः ॥ तपोवनानि रम्याणि ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ ७ ॥ अथापश्यत् कौशिकस्य आश्रमे द्विजपुङ्गवः ॥ शिवशर्मेति विख्यातो पितृभ्यां रहितस्तदा ॥ ८ ॥ अपरं नाम तस्यास्ति रूपराशीति विश्रुतम् ॥ नास्ति तत्सदृशं रूपं समस्ते भुविमण्डले ॥ ९ ॥ अतो ऋषिभिरुद्गीर्णं रूपराशित्वमेव हि ॥ धूर्जटिः स्वाशयं सर्वं न्यवेदयत तान् ऋषीन् ॥ १० ॥ तैरत्र मोदितः सोऽपि शिवशर्मेण संयुतः ॥ जगाम नगरं स्वीयं हर्षेणोत्फुल्लमानसः ॥ ११ ॥ सर्वैर्बन्धुजनैः सार्धं विवाहमकरोद्द्विजः ॥

नाम रूपराशी था ॥ ९ ॥ समस्त भूमण्डल मे उसके समान किसी का भी रूप नहीं था इसलिये ऋषियों ने उसका रूपराशी नाम रख दिया ॥ १० ॥ धूर्जटि ने उन ऋषियों के पास जाकर अपना सब आशय कहा, ऋषियों के विवाह प्रस्ताव का अनुमोदन करने पर शिवशर्मा को साथ में लेकर धूर्जटि ॥ ११ ॥ हर्ष से प्रफुल्ल मन होकर अपने

नगर को आये और समस्त बन्धुजनों को एकत्रित कर कन्या का शिवशर्मा के साथ विवाह कर दिया ॥ १२ ॥ और पास मे ही रहने के निमित्त गृह दिया, गोधन, धन और अनेक तरह के भेट दिये, अन्य ब्राह्मणों को भी बहुत सी दक्षिणा दी ॥ १३ ॥ शिवशर्मा ब्राह्मण उस सुशीला गुणवती के साथ प्रपञ्चजनित अपूर्व सुख का आनन्द करने लगा ॥१४॥ इसके बहुत समय बाद काल से प्रेरित वह शिवशर्मा ब्राह्मण समिधा के निमित्त वन को गया और

नातिदूराद्गृहं दत्तं गोधनानि धनानि च ॥ १२ ॥ पारिबर्हं बहुविधं विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणाम् ॥
शिवशर्मा तया साकं गुणवत्या सुशीलया ॥ १३ ॥ अपूर्वं इव भुञ्जानो प्रपञ्चजनितं सुखम् ॥
अथ कालेन बहुना स द्विजः कालचोदितः ॥ १४ ॥ समिधार्थं वनं यातो वृक्षच्छायामुपाश्र-
यत् ॥ पीत्वा तच्छिशिरं तोयं सुष्वाप च तरोरधः ॥ १५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे विप्रो गिलितोऽज-
गरेण सः ॥ न तत्र कोऽपि बुबुधे अस्तं यातो दिवाकरः ॥ १६ ॥ श्वश्रूश्वशुरतत्पत्नीसेवकैः

उस वन के वृक्ष की छाया में जाकर बैठ गया तथा शीतल जल पीने के बाद उसी वृक्ष की छाया मे सो गया ॥१५॥ उसी समय शिवशर्मा ब्राह्मण को अजगर ने आकर लील लिया। वहां लीलते किसी ने देखा नहीं और सूर्यनारायण अस्ताचल को चले गये ॥ १६ ॥ सूर्यास्त हो जाने पर सेवकों को साथ लेकर सास ससुर और उसकी स्त्री ने समस्त

वन के स्थानों में दीपिका (मसाल) के सहारे खोज किया ॥ १७ ॥ रात्रिभर अन्वेषण (खोज) करने के बाद सूर्योदय होने पर शिवशर्मा ब्राह्मण न मिला, तब वे निराश और दुखी होकर अपने गृह चले आये ॥ १८ ॥ तदनन्तर पतिव्रता गुणवती शोकाकुल हो पिता के गृह मे रहने लगी और नित्य देवता के पूजन में रत रहती थी ॥ १९ ॥

सहितं वनम् ॥ अन्वेषयामास निशि दीपिकाभिः समन्ततः ॥ १७ ॥ एवमन्वेषमाणेषु भास्करस्योदयोऽभवत् ॥ ततस्ते दुःखिता नूनं निराशा गृहमागताः ॥ १८ ॥ ततो गुणवती साध्वी पितृगेहनिवासिनी ॥ देवार्चनरता नित्यं शोकाकुलितमानसा ॥ १९ ॥ कदाचिद्दैवयोगेन नारदः समुपागतः ॥ विधिवत् पूजयामास प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥ २० ॥ नारदस्तु प्रसन्नात्मा उपदेशं चकार ह ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ भद्रे कुरु शुचे मासि व्रतं रम्भाभिधं शुभम् ॥ पूजयस्व विधानेन देवं भर्तृस्वरूपिणम् ॥ २२ ॥ यावज्जीवं कुरु व्रतं अनन्यमनसाऽनघे ॥ विष्णुं भर्ता-

किसी समय दैवयोग से उसके यहाँ नारदजी आये ॥ २० ॥ गुणवती ने नारदजी का विधिवत् पूजन किया और बारम्बार प्रणाम किया । इससे प्रसन्नात्मा नारदजी ने गुणवती को व्रत का उपदेश किया ॥ २१ ॥ नारदजी बोले कि हे भद्रे ! ज्येष्ठमास मे तू पवित्र रम्भाव्रत को कर और विधान से भर्तृस्वरूप देव का पूजन कर ॥ २२ ॥

और हे अनघे ! अनन्य मन से जीवनपर्यन्त इस व्रत को कर । इस व्रत के प्रभाव से विष्णु भगवान् का पतिरूप में पाकर शाश्वत (स्थायी) पद को तू प्राप्त करेगी ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार नारदजी के उपदेश करने पर वनवासिनी गुणवती ने कदलीवन लगाया ॥ २४ ॥ और नारदजी के कथनानुसार समस्त कर्म को किया और इस तरह बहुत समय बीत जाने पर जरा से अत्यन्त जर्जर हो गई ॥ २५ ॥ और उसी वन में मृत्यु के होने पर विमान में

रमासाद्य स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ २३ ॥ उपदिष्टा तदा ब्रह्मन् नन्दने द्विजवल्लभा ॥ वापयामास कदलीवनं वनविहारिणी ॥ २४ ॥ चकार सकलं कर्म नारदेन यथोदितम् ॥ गते बहुतिथे काले जरया व्यापिता भृशम् ॥ २५ ॥ तद्वने निधनं प्राप्ता विमानस्था दिवं गता ॥ तत्पुण्यनिचयाज्जाता तुलसी विष्णुवल्लभा ॥ २६ ॥ नान्यत् किञ्चित् प्रियं विष्णोस्तुलस्यास्तु प्रियं ऋते ॥ गिरिजापि चकारैवमाज्ञया गिरिजापतेः ॥ २७ ॥ अस्य व्रतप्रभावेण गिरिजा शिववल्लभा

सवार होकर स्वर्ग को गई । जन्मान्तर में उस व्रत के पुण्यराशि से विष्णु की वल्लभा तुलसी हुई ॥ २६ ॥ विष्णु भगवान् को सिवाय तुलसी के दूसरी कोई वस्तु प्रिय नहीं है । हे ब्राह्मण लोग ! इस व्रत को श्रीशिवजी की आज्ञा से पार्वतीजी ने भी किया ॥ २७ ॥ और इसी व्रत के प्रभाव से पार्वतीजी श्रीशिव को प्रिय हुईं ॥ २८ ॥

॥ २८ ॥ श्रुत्वा षडाननमुखात् महिमानमुच्चैः ब्रह्मर्षयः प्रमुदिताः कुसुमावतंसैः ॥ पूजां च चक्रतुरलिंग्य मुहुर्भवानी स्वानन्दकन्दमरविन्दनिभं षडास्यम् ॥ २९ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्री स्कन्दजी के मुख से श्रेष्ठ माहात्म्य को सुनकर प्रसन्न ब्रह्मर्षियों ने पुष्पों की माला तथा भूषणों से स्कन्दजी का पूजन किया, जो कि स्कन्दजी पार्वती के आनन्द के कन्द और कमल समान छ (छः) मुखों को धारण करने वाले है ॥ २९ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ऋषि लोग बोले कि हे स्कन्द जी ! पुनः कल्याणकारी ज्येष्ठमास का माहात्म्य हम लोगों से कहिये । जिसके श्रवणमात्र से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ स्कन्द जी बोले इस मास में विष्णु भगवान् उपवास करने से प्रसन्न होते हैं, इसलिये उपवास व्रत को करे । क्योंकि मासोपवास व्रत एक लाख उपवास के समान होता है ॥ २ ॥ एक मास पर्यन्त उपवास करना, प्रातःकाल स्नान करना, जितेन्द्रिय रहना, अथवा कन्द मूल फल खाकर

ऋषय ऊचुः ॥ भूयः कथय नो भद्रं माहात्म्यं माससम्भवम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ उपवासप्रियो विष्णुरुपवासव्रतं चरेत् ॥ लक्षोपवाससदृशं मासोपवासकं व्रतम् ॥ २ ॥ उपोष्य सकलं मासं प्रातःस्नायी जितेन्द्रियः ॥ कन्दमूलफलाहारो भूमिशायी विमत्सरः ॥ ३ ॥ शौचाचारयुतो नित्यं सत्यवाक् प्रियदर्शनः ॥ प्रतिपद्दिनमारभ्य यावत्कृष्णत्रयोदशी ॥ ४ ॥ अतन्द्रितो व्रतं कार्यं मदमोहविवर्जितः ॥ त्रयोदश्यां समुत्थाय मङ्गलं स्नानमाचरेत् ॥ ५ ॥ पुण्याहवाचनं कार्यमधिवास्य च देवताः ॥ सौवर्ण राजत ताम्रं

रहना, पृथिवी पर शयन करना और मत्सरता (दूसरे का बुरा शोचना) से रहित रहना ॥ ३ ॥ नित्य शौच आचार से युक्त रहना, सत्य वचन बोलना और प्रसन्न रहना चाहिये । अथवा प्रतिपत् से लेकर कृष्णपक्ष की त्रयोदशी पर्यन्त ॥ ४ ॥ मद मोह तन्द्रा (आलस्य) का त्याग कर व्रत करना चाहिये । त्रयोदशी के दिन मङ्गल

स्नान करे ॥ ५ ॥ पूजास्थान में बैठकर पुण्याहवाचन करे और देवताओं का अधिवासन कर सुवर्ण चाँदी तांवा अथवा मिट्टी का नूतन मजबूत ॥ ६ ॥ घट स्थापित कर उसमे पञ्चरत्न छोड़कर घट के ऊपर विष्णु भगवान् को स्थापित करे, विष्णु की प्रतिमा शङ्ख चक्र गदा से युक्त हो ॥ ७ ॥ सुवर्ण की हो और लक्ष्मी गरुड़ जी से युक्त हो। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! अपने गृह्यसूत्र के अनुसार प्रथम ब्रह्मादि मण्डलदेवता को स्थापित करे ॥ ८ ॥ और चार द्वार से

मृन्मयं वा नवं दृढम् ॥ ६ ॥ स्थापयेत् कलशं दिव्यं पञ्चरत्नपरिप्लुतम् ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ७ ॥ निर्मितं शातकुम्भेन लक्ष्मीगरुडसंयुतम् ॥ ब्रह्मादिदेवताः स्थाप्य स्वगृह्येन द्विजर्षभाः ॥ ८ ॥ पुष्पमण्डपिका कार्या चतुर्द्वारोपशोभिता ॥ कदलीस्तम्भसंयुक्ता तोरणैर्विविधैर्युता ॥ ९ ॥ तन्मध्ये स्थापयेद्देवमुपचारैरनेकशः ॥ पक्वान्नैः पायसैः खण्डैरोदनैर्दधिसंयुतैः ॥ १० ॥ ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैर्नारिकेलादिभिः फलैः ॥ धूपैर्दीपैश्च ताम्बूलैर्दिव्यैः सौगन्धिकैस्तथा ॥ ११ ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात् पुराणश्रवणादिभिः ॥ कीर्तनं कारयेत्तत्र हरि-

शोभित पुष्पों का मण्डप बनाना, केला के स्तम्भ से युक्त कर विविध प्रकार के तोरणों से युक्त करना ॥ ९ ॥ उस मण्डप के मध्य भाग मे विष्णु देव को स्थापित कर अनेक उपचारों से, पक्वान्न, पायस, खाड़, दही मिला ओदन (भात) ॥ १० ॥ ऋतुकाल के पुष्प, नारिकेल आदि फल, धूप, दीप, ताम्बूल और दिव्य सुगन्ध वस्तु से पूजन करे ॥ ११ ॥ रात्रि में पुराण का श्रवण आदि के द्वारा जागरण करे, और हरिभक्ति के जानकार लोगों से कीर्तन

करावे ॥१२॥ गीत (गान) वादित्र (वाद्य) के निर्घोष (आवाज) से महानिशा (अर्धरात्रि) का समय व्यतीत करे। प्रातःकाल होनेपर नदी में स्नान करे ॥ १३ ॥ सब नित्य की विधि करके ब्राह्मणों के अनुमोदन करने पर पाँच ऋत्विजों का वरण करे और उनका वस्त्र भूषण से पूजन करे ॥१४॥ कुण्ड या स्थण्डिल (वेदी) में अग्नि का स्थापन

भक्तिविशारदैः ॥ १२ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्निनाय च महानिशाम् ॥ ततः प्रभाते विमले नद्यां च स्नानमाचरेत् ॥ १३ ॥ कृत्वा नित्यविधिं सर्वं ब्राह्मणैरनुमोदितः ॥ वरयेत् ऋत्विजान् पञ्च पूजयेद्वस्त्रभूषणैः ॥ १४ ॥ होमं कुर्यात् प्रयत्नेन कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा ॥ पौरुषेणाथ सूक्तेन कलावारं हुनेद्धविः ॥ १५ ॥ शर्कराखण्डसहितं ससर्पिस्तिलपायसम् ॥ विष्णोनुकेति मन्त्रेण तथैवाष्टोत्तरं शतम् ॥ १६ ॥ पूर्णाहुतिस्ततो हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥ ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यात् गावश्च बहुदुग्धदाः ॥ १७ ॥ छत्रोपानहदानानि दशदानानि दापयेत् ॥ स्वशक्त्या

कर अच्छी तरह हवन करे और पुरुषसूक्त के मन्त्रों से सोलह (१६) वार आहुति दे ॥ १५ ॥ शर्करा, खाड़, घृत, तिल, पायस की अष्टोत्तरशत (१०८) आहुति 'विष्णोनुकेति' मन्त्र से देवे ॥ १६ ॥ बाद पूर्णाहुति हवन कर शेष हवन को समाप्त करे। ऋत्विजों को दक्षिणा देकर दूध देनेवाली गौओं का दान करे ॥ १७॥ छत्र (छाता) जूता का

दान करे और दश प्रकार के जो दान है उनको भी दे और अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा दक्षिणा देकर प्रसन्न करे ॥ १८ ॥ दो वस्त्रों से वेष्टित जो विष्णु की पूजित प्रतिमा है उसको अपने गुरु के लिये मन्त्र पढ़कर देवे । मन्त्र का अर्थ—केशव भगवान् इस प्रतिमा को ग्रहण करें और देनेवाले भी केशव भगवान् हैं, तथा

भोजयेद्विप्रान् दक्षिणाभिः सुतोषितान् ॥ १८ ॥ तामर्चां गुरवे दद्यात् वस्त्रयुग्मेन वेष्टिताम् ॥
केशवः प्रतिगृह्णातु केशवो वै ददाति च ॥ १९ ॥ केशवस्तारकोभाभ्यां केशवाय नमो नमः ॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य दक्षिणासहितां हरेः ॥ २० ॥ प्रतिमां विप्रवर्याय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ॥
ततस्तु पारणां कृत्वा वन्धुभिः सहितं द्विजाः ॥२१॥ व्रतं कुर्वन्ति ये लोके दुर्लभं जगतीतले ॥
ते शोकमोहनिर्मुक्ता लभन्ते वाञ्छितं ध्रुवम् ॥ २२ ॥ त्रयोदशाब्दपर्यन्तं कार्यं तत्तु सुदुर्लभम् ॥

देने और ग्रहण करने वाले दोनों के उद्धारकर्ता केशव भगवान् है, इसलिये केशव भगवान् को नमस्कार है । इस मन्त्र को पढ़कर दक्षिणा के साथ विष्णु की ॥ १९–२० ॥ प्रतिमा कुटुम्बी श्रोत्रिय श्रेष्ठ ब्राह्मण को देकर हे ब्राह्मण लोग! वन्धुवर्ग के साथ बैठकर व्रत का पारण करे ॥ २१ ॥ जो लोग जगतीतल में इस दुर्लभ व्रत को करते हैं वे शोक मोह से छूटकर अवश्य वाञ्छित फल को पाते हैं ॥ २२ ॥ इस व्रत को तेरह (१३) वर्ष पर्यन्त करके व्रत की सम्पूर्ण

सिद्धि के लिये अति दुर्लभ उद्यापन को करे ॥ २३ ॥ प्रथम सपत्नीक तेरह (१३) ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे उनका वस्त्र भूषण से पूजन करे और १३ गौ का दान करे ॥ २४ ॥ गौ, वस्त्र भूषण से भूषित हो, बछवा से युक्त हो, मांसल (मोटी तगड़ी) हो और बहुत दूध देनेवाली हो। गौओं के साथ यथाशक्ति दक्षिणा देकर अन्य ब्राह्मणों को भूयसो-दक्षिणा दे ॥ २५ ॥ अपने वित्त (धन) के अनुसार पूर्वोक्त हवनादि कर्म करे। श्रेष्ठ विष्णु के व्रत में वित्तशाठ्य

उद्यापनं ततः कार्यं सम्पूर्णव्रतसिद्धये ॥ २३ ॥ निमन्त्र्य ब्राह्मणान् पूर्वं सपत्नीकान् त्रयोदश ॥ वस्त्रालंकारतः पूज्य दत्त्वा गाश्च त्रयोदश ॥ २४ ॥ सुभूषिताः सवत्साश्च मांसला बहुदुग्धदाः ॥ दक्षिणाश्च यथाशक्ति अन्येभ्यो भूरिदक्षिणाः ॥ २५ ॥ होमादिकं तु पूर्वोक्तं कार्यं वित्तानु-सारतः ॥ वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं परे विष्णुव्रतेऽथवा ॥ २६ ॥ शक्त्या यत् क्रियते किञ्चित् तत्सर्वं सफलं भवेत् ॥ विफलं तद्विजानीयात् दाम्भिकस्य शठस्य च ॥ २७ ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्वशक्त्या पूजयेद्धरिम् ॥ २८ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

(धन की शठता) न करे अथवा ॥ २६ ॥ यथाशक्ति जो कुछ किया जाता है वह सब सफल होता है। और जो दाम्भिक अथवा शठ है उसका समस्त किया हुआ कर्म निष्फल हो जाता है ॥ २७ ॥ इसलिये सभी उपायों से अपनी शक्ति के अनुसार विष्णु का पूजन करे ॥ २८ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भव-व्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

स्कन्दजी बोले कि प्रथम पर्वतों के स्वामी हिमवान् भूधर नाम से विख्यात था और वह स्वेच्छा से स्थावर तथा जङ्गम दोनों रूप को धारण करता था ॥ १ ॥ शोभन अङ्गवाली उसकी स्त्री का मेनका नाम था । हिमवान् (भूधर) सर्व सिद्धियों से युक्त होने पर सन्तानहीन होने के कारण अत्यन्त दुखी था ॥ २ ॥ और सन्तति के लिये व्रत दानों को भी किया परन्तु सन्तति न मिली । एक दिन हिमवान् ने अपनी स्त्री मेना को बुलाकर 'धिक्कार है २'

स्कन्द उवाच ॥ पुरा हिमवतो नाम भूधरो भूधराधिपः ॥ स्थावरं जङ्गमं रूपं बिभर्ति स्वेच्छया तदा ॥ १ ॥ तस्य भार्या सुचार्वङ्गी मेनका नाम नामतः ॥ सर्वसिद्धिसमायुक्तो अनपत्यः सुदुःखितः ॥ २ ॥ चकार व्रतदानानि सन्ततिं न लभे चिरम् ॥ ततो मेनां समाहूय धिग्गिति प्रलपन् मुहुः ॥ ३ ॥ रूपलावण्यसम्पन्ना या नारी सुतवर्जिता ॥ सा नारी सर्वलोकेषु निन्दिता दुर्भगेति च ॥ ४ ॥ त्वां दृष्ट्वा मम सन्तापो जायते सुचिरं सदा ॥ अद्यप्रभृति नैवास्यं दर्शनीयं शुचिस्मिते ॥ ५ ॥ कथं बिभर्षि वै प्राणान् पशूनिव विपश्चितान् ॥ इति भर्तृवचः

कहकर बारम्बार प्रलाप करने लगा ॥ ३ ॥ और बोला कि जो रूप लावण्य से युक्त स्त्री सन्तान से हीन हो वह स्त्री समस्त लोकों में निन्दित और दुर्भगा है ॥ ४ ॥ हे शुचिस्मिते ! तुमको देखकर सदा मुझे अधिक समय तक सन्ताप होता रहता है इसलिये अबसे लेकर तुम्हारा मुख न देखेंगे ॥ ५ ॥ विपश्चित् (विद्वान्) पशुओं के समान

प्राणों को तू कैसे धारण करती है। यह पति के वचन को सुनकर वायु के आघात से रम्भा (केला) के समान ॥ ६ ॥ और वज्र के आघात से पर्वत के समान मेनका पृथिवी पर गिर गई। तथा रोदन क्रन्दन करती हुई श्री विष्णु भगवान् के शरण में गई ॥ ७ ॥ रमा (लक्ष्मी) जी के प्रार्थना करने पर और सामने नारद ऋषि को देखकर विष्णु भगवान् ने नारद जी को मेनका के पास भेजा ॥ ८ ॥ नारद जी ने वहाँ जाकर पर्णाशन व्रत का उपदेश दिया और कहा कि

श्रुत्वा रम्भा वातहता यथा ॥ ६ ॥ निपपात महीपृष्ठे वज्राहत इवाचलः ॥ रोदिति क्रन्दमाना सा श्रीविष्णुं शरणं ययौ ॥ ७ ॥ रमया प्रार्थितो विष्णुः नारदं दृष्टवान् विभुः ॥ अजस्रं प्रेषयामास मेनायाश्च समीपतः ॥ ८ ॥ नारदेनोपदिष्टं तु पर्णाशनव्रतं तदा ॥ ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां व्रतं कार्यं विधानतः ॥ ९ ॥ अदृष्टं मनुजैः पूर्वं याता सा गिरिगह्वरम् ॥ सिंहव्याघ्रगणाकीर्णं झिल्लीनां गणसंवृतम् ॥ १० ॥ तत्र गत्वा स्थितवती स्थाणुवत् प्रयता सती ॥ नचाहारं च निद्रां च नचान्यत् कर्म कुर्वती ॥ ११ ॥ स्मरन्ती मानसीं मायां विष्णोर्गुणमयीं सदा ॥ दैव-

ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया के दिन विधान से व्रत को करो ॥९॥ मेनका उपदेश होनेपर जिसे मनुष्यों ने कभी नहीं देखा था ऐसे पर्वत की गुफा में गई। जो कि सिंह व्याघ्रगणों से व्याप्त है और झिल्लियों से युक्त हैं ॥ १० ॥ वह पतिव्रता वहाँ जाकर स्थाणु के समान नियम में स्थित हो गई । न भोजन न निद्रा न अन्य कर्म को ही करती है ॥ ११ ॥

केवल श्री विष्णु भगवान् की गुणमयी मानसी माया का सदा स्मरण करती थी। यह सब दुष्कर कर्म दैवयोग से ज्येष्ठ मास में हुआ ॥ १२ ॥ उस व्रत के पुण्यप्रभाव से जगन्मयी माया प्रकट हो गई। उस माया को देखकर मेना ने परमभक्ति से स्तुति किया, तब माया ने उस मेनका से कहा कि तू वर माँग ॥ १३ ॥ तुम्हारे मासोपवास व्रत से मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारी भक्ति के वशीभूत होकर अदेय (न देने योग्य) वस्तु को भी दूंगी ॥ १४ ॥ यह जगदम्बा के

योगेन तत्सर्वं जातं ज्येष्ठे सुदुष्करम् ॥१२॥ तस्य पुण्यप्रभावेण आविर्भूता जगन्मयी ॥ तुष्टाव परया भक्त्या वरं ब्रूहीति साऽब्रवीत् ॥ १३ ॥ तव मासोपवासेन व्रतेन परितोषिता ॥ अदेयमपि दास्यामि तव भक्तिवशीकृता ॥ १४ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा उवाच च जहर्ष च ॥ मेनका उवाच ॥ यदि तुष्टासि देवेशि कन्या भव ममाङ्गणे ॥ १५ ॥ भवामीति वरं दत्त्वा पुत्रैकस्ते भविष्यति ॥ अन्यदेकं हितं वच्मि तत् कुरुष्व ममाज्ञया ॥ १६ ॥ अनायासेन ते लब्धं

वचन सुनकर मेनका बोली और प्रसन्न भी हुई। मेनका बोली कि हे देवेशि ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे आँगन में आप कन्या होकर रहे ॥ १५ ॥ जगदम्बा ने कहा कि 'मैं कन्या होऊंगी' ऐसा वर देकर फिर कहा कि तुमको एक पुत्र भी होगा। हे मेनके ! तुमसे एक हित की बात कहती हूँ सो तुम मेरी आज्ञा से करो ॥ १६ ॥ तुमको अनायास से

ही ज्येष्ठ का माहात्म्य मिल गया। तुम अपने घर को जाओ और इसको यत्न से विधिपूर्वक करो ॥ १७ ॥ इस व्रत का विधान भृगु ऋषि आज आकर तुमसे कहेंगे। ऐसा कहकर माया अन्तर्हित हो गई और मेनका भी अपने गृह को गई ॥ १८ ॥ घर जाकर मेनका ने हिमाचल से सब समाचार विस्तार से कहा और भृगु ऋषि के उपदिष्ट मार्ग से उस व्रत को मेनका ने भी किया ॥ १९ ॥ इस समाचार को जानकर हिमवान् भी प्रसन्नता और हर्ष के साथ

माहात्म्यं ज्येष्ठसम्भवम् ॥ साङ्गं कुरु प्रयत्नेन गच्छ त्वं निजमन्दिरम् ॥ १७ ॥ विधानं सकलं तेऽद्य भृगुरागत्य शंसति ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे माया मेनापि स्वगृहं ययौ ॥ १८ ॥ हिमाचलाय तत्सर्वं कथयामास विस्तरात् ॥ भृगूपदिष्टमार्गेण मेनकापि चकार तत् ॥ १९ ॥ हिमवानपि तज्ज्ञात्वा तुतोष च जहर्ष च ॥ मेनामालिंग्य पाणिभ्यामङ्के कृत्वा तु सान्त्वयन् ॥ २० ॥ अथ स्वल्पेन कालेन सगर्भा मेनकाऽभवत् ॥ वसिष्ठोऽपि समागत्य तस्याः पुंसवनक्रियाम् ॥ २१ ॥ चकार हिमवद्भाग्यसदृशो भुवि दुर्लभः ॥ आविर्बभूव तस्याग्रे जगद्धात्री निजेच्छया ॥ २२ ॥

दोनों हाथों से मेना का आलिङ्गन कर अपने गोद में बैठाकर समझाने लगा ॥ २० ॥ इसके अनन्तर कुछ दिन बीतने पर मेना गर्भवती हो गई और वसिष्ठ ऋषि ने आकर मेना का पुंसवन क्रिया को ॥ २१ ॥ किया, हिमाचल के समान मनुष्य पृथिवी पर दुर्लभ होते हैं, जिस हिमवान् के सामने अपनी इच्छा से जगद्धात्री माया प्रकट हो गई ॥१२॥

उमा गौरी पार्वती च नाम्ना विख्यातिमागता ॥ एवं ज्येष्ठस्य शुक्लायां चतुर्थ्यां जनिता शिवा ॥ ॥ २३ ॥ तस्मात् सा तत्र सम्पूज्या स्त्रीभिः सौभाग्यवृद्धये ॥ मृन्मयं गिरिशं कृत्वा चतुर्द्वारोपशोभितम् ॥ २४ ॥ धान्यसंरोहणं कार्यं समन्ताद्गिरिजासनात् ॥ मध्ये चान्दोलनं कार्यं स्वशक्त्या रजतादिना ॥ २ ५॥ उमां स्वर्णमयीं कुर्यात् संस्थाप्यान्दोलने शुभे ॥ प्रपूज्य विधिवद्भक्त्या यथाविभवसम्भवैः ॥ २६ ॥ पूजयेच्च सुवासिन्यो भोजयेच्च कुमारिकाः ॥ नानासौभाग्यद्रव्यैश्च

और उमा गौरी पार्वती नाम से विख्यात हुई। इस तरह ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी के दिन शिवा प्रकट हुई हैं ॥ २३ ॥ इसलिये सौभाग्य की वृद्धि के लिये स्त्रियाँ चतुर्थी के दिन शिवा का पूजन करें। मिट्टी का शिव बनाकर मण्डप चार द्वार से शोभित करे ॥ २४ ॥ गिरिजासन के चारो तरफ धान्य को बिछाकर मध्यभाग में अपनी शक्ति के अनुसार रजत (चाँदी) आदि का आन्दोलन (झूला) स्थापित करे ॥२५॥ उमा की सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर सुन्दर झूला में स्थापित करे और विभव के अनुसार भक्ति से विधिवत् पूजन करे ॥ २६ ॥ तथा सुवासिनी (सोहागिन) ब्राह्मणियों की पूजा करें और कुमारिका (कन्याओं) को भोजन करावे। तथा अनेक सौभाग्य द्रव्य, माला,

चन्दन से पूजन कर ॥ २७ ॥ गीत (गाना) वादित्र (वाद्य) के निर्घोष आदि के द्वारा मास व्यतीत करे । नित्य हविष्यान्न का भोजन करे और यत्नपूर्वक नित्य कथा का श्रवण करे ॥ २८ ॥ बाद फलसम्पत्ति के लिये उद्यापन को करे और गौरीर्मिमाय मन्त्र पढ़कर पय (पायस) से हवन करे ॥ २९ ॥ समस्त पूजन हवन कार्य को कर दूध देनेवाली

माल्यैश्चन्दनकल्पकैः ॥ २७ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्मासमेवं समापयेत् ॥ नित्यं हविष्यमश्नीयात् कथां श्रुत्वा प्रयत्नतः ॥ २८ ॥ उद्यापनं ततः कुर्यात् फलसम्पत्तिहेतवे ॥ गौरीर्मिमायेति मन्त्रेण पयोभिर्होममाचरेत् ॥ २९ ॥ निर्वर्त्य सकलं कर्म गां च दद्यात् पयस्विनीम् ॥ गौरीव्रतमिति ख्यातं स्त्रीणां सौभाग्यदायकम् ॥ ३० ॥ या मोहात् कुरुते नारी चतुर्थ्यां भोजनं यदि ॥ दुर्भगत्वमवाप्नोति सा नारी जन्मजन्मनि ॥ ३१ ॥ उमाजयन्ती विख्याता तदादि जगतीतले ॥ पुनश्चकार सा मेना पुत्रसन्तानहेतवे ॥ ३२ ॥ तेन व्रतप्रभावेण जातः पुत्रो

गौ का दान करे। यह स्त्रियो के लिये सौभाग्यदायक गौरीव्रत प्रसिद्ध है ॥ ३० ॥ जो स्त्री मोहवश चतुर्थी के दिन भोजन करती है वह जन्म जन्म (प्रतिजन्म) मे दुर्भगा होती है ॥ ३१ ॥ उस दिन से इस व्रत की जगतीतल में उमा-जयन्ती नाम से प्रसिद्धि हुई। मेनका ने पुत्र सन्तान के निमित्त पुनः इस व्रत को किया ॥ ६२ ॥ और इस व्रत के

प्रभाव से महान् ओजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, वह मैनाक नाम से दूसरा हिमाचल कहा जाता था ॥ ३३ ॥

महौजसः ॥ मैनाक इति विख्यातो हिमाचल इवापरः ॥ ३३ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमास-माहात्म्ये अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥



स्कन्द जी बोले कि हे ब्राह्मण लोग ! मैं इस विषय में पापनाशिनी पवित्र कथा का वर्णन करूँगा, इसके श्रवण-मात्र से आपलोगों का संशय दूर हो जायगा ॥ १ ॥ विन्ध्यपर्वत के उत्तर भाग में कीर्तिमान्, देवता अतिथि का पूजक मेधावी नामक ब्राह्मणश्रेष्ठ रहता था ॥ २ ॥ गौतम कुल मे उत्पन्न चन्द्रवती नाम की उसकी स्त्री थी । वह स्त्री पतिव्रत धर्म में परायण और पतिसेवा में तत्पर रहा करती थी ॥ ३ ॥ तथा गृहकर्म में लीन सर्वदा प्रिय वचन

स्कन्द उवाच ॥ अत्रैव वर्णयिष्यामि कथां पापहरां शुभाम् ॥ अस्याः श्रवणमात्रेण संशयो वो गमिष्यति ॥ १ ॥ विन्ध्यस्योत्तरदिग्भागे कीर्तिपूर्वो द्विजोत्तमः ॥ नाम्ना मेधाविविख्यातो देवतातिथिपूजकः ॥ २ ॥ भार्या चन्द्रवती नाम गौतमस्य कुलोद्भवा ॥ पतिव्रतपरा नारी पतिशुश्रूषणे रता ॥ ३ ॥ गृहकर्मसु संसक्ता सर्वदा प्रियभाषिणी ॥ कृषिकर्मकरो नित्यं वार्धुषीं वृत्तिमाश्रयत् ॥ ४ ॥ गते बहुविधे काले अनपत्यः सुदुःखितः ॥ चिन्तया परया बुद्ध्या न किञ्चिद्बुबुधेऽखिलम् ॥ ५ ॥ चिन्तामग्नस्य तस्याथ राजयक्ष्मा बभूव ह ॥ उपायान् विविधान्

बोलनेवाली थी । मेधावी नित्य कृषिकर्म को करता था और वार्धुषी (व्याज) की वृत्ति (जीविका) को करता था ॥ ४ ॥ बहुत समय बीत जाने पर सन्तान न होने के कारण वह मेधावी अत्यन्त दुखी हो गया और अधिक चिन्ता होने के कारण स्मरण शक्ति से हीन हो गया ॥ ५ ॥ निरन्तर चिन्ता में मग्न रहने के कारण मेधावी को राजयक्ष्मा

(क्षय) रोग हो गया। रोगमुक्ति के निमित्त मणि मन्त्र और औषध के द्वारा विविध प्रकार के उपायों को किया ॥६॥ इसके बाद मेधावी को दारुण गलत् कुष्ठ रोग हो गया जिससे वह ब्राह्मणश्रेष्ठ एक पक्ष मास से अधिक जीवन के विषय मे निराश हो गया ॥ ७ ॥ विधि (दैव) तथा उसके अनुसार रोग को देखकर स्वयं भी उसका अनुगामी हो गया। मेधावी ब्राह्मण और उसकी स्त्री दोनों घर से शीघ्र निकल कर गङ्गाजी के तट पर आये ॥ ८ ॥ और अपने हाथ से गङ्गा के

कृत्वा मणिमन्त्रौषधादिकान् ॥ ६ ॥ अथ तस्य गलत्कुष्ठो रोगः परमदारुणः ॥ प्राणे निराशतां यातो पक्षं मासं द्विजोत्तमः ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा विधिं तथा कार्यं छन्दगामी बभूव ह ॥ निर्गतौ स्वगृहात्तूर्णं गङ्गातीरमवापतुः ॥ ८ ॥ तुलसीनां वनं तत्र निर्मितं स्वबलेन च ॥ पतिना सहिता तत्र निनाय बहुवासरम् ॥ ९ ॥ आगतस्त्वथ ज्येष्ठस्तु सर्वपापप्रणाशनः ॥ तस्यानुष्ठानमात्रेण नारदः स्वेच्छयाऽऽगतः ॥ १० ॥ प्रणम्य विधिवत्तं वै पूजयित्वा यथाविधि ॥ निवेद्य सकलं

तट भाग में तुलसी का वन लगाया तथा मेधावी की स्त्री ने अपने पति के साथ रह कर बहुत समय व्यतीत किया ॥ ९ ॥ जब सर्वपापों का नाशक ज्येष्ठ मास आया और ज्येष्ठ मास के नियम व्रत करने से नारद ऋषि वहाँ स्वेच्छा से आये ॥ १० ॥ तब विधिवत् नारद ऋषि को प्रणाम कर यथाविधि उनका पूजन किया तथा समग्र शोक मोह के

कारण को भी निवेदन किया ॥ ११ ॥ शोककारण सुनकर प्रसन्नात्मा नारद जी हित वचन बोले कि हे बाले ! पूर्वजन्म में इस ब्राह्मण ने अज्ञानवश मद से उद्धत होकर ॥ १२ ॥ ज्येष्ठ मास के माहात्म्य का अपमान किया। उसी पाप से यह मेधावी पीड़ित हो गया है, इसमें संशय नहीं है ॥ १३ ॥ तुम उस पापदोष के निरासार्थ ज्येष्ठ मास में व्रत करो। जो कि सुख सौभाग्य को देनेवाला और गौरीव्रत नाम से विख्यात है ॥ १४ ॥ इस तरह नारद ऋषि के

तस्य शोकमोहस्य कारणम् ॥ ११ ॥ नारदोऽपि प्रसन्नात्मा हितं वचनमब्रवीत् ॥ पुरा जन्मनि बालेऽयं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥ १२ ॥ माहात्म्यं ज्येष्ठमासस्य अवमन्य मदोद्धतः ॥ तदार्त्तस्तेन पापेन-जातोऽयं नात्र संशयः ॥ १३ ॥ तद्दोषपरिहारार्थं शुचिमासे व्रतं कुरु ॥ गौरीनाम्ना तु विख्यातं सुखसौभाग्यदायकम् ॥ १४ ॥ तथेत्युक्त्वा विशालाक्षी पूजयामास तं भुवि ॥ मुनौ याते च सुश्रोणी चकार पतिना भुवि ॥ १५ ॥ नारदादिष्टमार्गेण भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ तस्यानुष्ठानमात्रेण मेधावी ब्राह्मणोत्तमः ॥ १६ ॥ शनैः शनैश्च मुक्तोऽभूत्तस्माद्रोगाद्द्विजोत्तमः ॥

कहने पर दूरदर्शिनी ब्राह्मणपत्नी चन्द्रवती ने व्रत को स्वीकार कर नारद जी का पूजन किया और उपदेशकर नारद मुनि के चले जाने पर सुश्रोणी चन्द्रवती ने पति के साथ इस पृथिवी पर ॥ १५ ॥ नारद मुनि के कथनानुसार भक्तियुक्त चित्त से व्रत को किया और व्रत के अनुष्ठानमात्र से मेधावी ब्राह्मणों मे श्रेष्ठ हो गया ॥ १६ ॥ और क्रमशः

उस रोग से भी मुक्त हो गया, बाद श्रेष्ठ उद्यापन कर्म कर ब्राह्मणों को पूजन कर तृप्त किया ॥१७॥ धन और अनेकों गोधन देकर अनेक विध पक्वान्न पायस आदि से बहुत से ब्राह्मणों को भोजन कराया ॥ १८ ॥ और स्त्री बान्धवों के साथ स्वयं भी पारण (व्रतान्त भोजन) किया तथा बन्धुओं सहित अपने घर आया ॥ १९ ॥ उस मेधावी के आने पर पुरवासियों ने उसके निमित्त महान् उत्सव मनाया। उस उत्सव मे एकत्रित सुहृद पुरवासियों के पूछने पर

उद्यापनं चकारोच्चैः पूजनं द्विजतर्पणम् ॥ १७ ॥ ददौ धनानि विप्रेभ्यो गोधनानि बहून्यपि ॥ भोजयन् बहुशो विप्रान् पक्वान्नैः पायसैरपि ॥ १८ ॥ स्वयं च पारणं चक्रे पत्न्या सह सबान्धवः ॥ ततः स्वगृहमायातो बन्धुभिः परिवारितः ॥ १९ ॥ महोत्सवः कृतः सर्वैस्तत्तदा पुरवासिभिः ॥ वृत्तान्तः कथितः स्वेषां पृच्छतां पुरवासिनाम् ॥ २० ॥ विस्मिताश्च तदा सर्वे माहात्म्यश्रवणादलम् ॥ अन्यस्मिन्नयने तौ तु पुत्रार्थं च प्रचक्रतुः ॥ २१ ॥ तस्य प्रभावात् सञ्जातो पुत्रः काम इवापरः ॥ जातकर्म चकाराशु ददौ गावः सहस्रशः ॥ २२ ॥ धनवस्त्रान्य-

मेधावी ने सब समाचार कह सुनाया ॥ २० ॥ उस समय माहात्म्य के श्रवण से सब विस्मित हो गये, और दूसरे अयन (वर्ष) के आनेपर पुत्र के लिये दोनों ने व्रत किया ॥२१॥ व्रत के प्रभाव से दूसरा कामदेव के समान पुत्र पैदा हुआ। शीघ्र जातकर्म संस्कार कर हजारों गौओं का दान किया ॥ २२ ॥ ब्राह्मणों को धन वस्त्र अलङ्कार आदि बहुत सा दा-

कर दिया। यह देखकर विश्वस्त उन पुरवासियों ने भी व्रत किया ॥ २३ ॥ और व्रतप्रभाव से समस्त पुरवासी मानसी, चिन्ता व शरीररोग से रहित होकर सुखी हो गये। उस दिन से इस व्रत की बहुत प्रसिद्धि हुई ॥२४॥ प्रथम इस व्रत को समर्थ श्री शिवजी ने पार्वती जी से कहा ॥ २५ ॥ और मैंने परम श्रेष्ठ व्रत रहस्य को सक्षेप में तुमसे कहा। श्री स्कन्द जी के वचन को सुनकर ऋषि लोग प्रसन्न हो गये ॥ २६ ॥ और पुष्प वृष्टि करने लगे तथा स्कन्द जी को जीव-

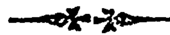
लङ्कारान् विप्रेभ्योऽप्यधिकं ददौ ॥ विश्वस्तास्तद्व्रतं चक्रुस्ततस्ते पुरवासिनः ॥ २३ ॥ सर्वेऽपि सुखिनो जाता आधिव्याधिविवर्जिताः ॥ तदादि परमां ख्यातिं प्राप्तं काले महद्व्रतम् ॥ २४ ॥ शिवायै कथितं पूर्वं शिवेन प्रभविष्णुना ॥ संक्षेपेण मयाऽऽख्यातं रहस्यं परमुत्कटम् ॥ २५ ॥ स्कन्दस्य वचनं श्रुत्वा ऋषयः प्रीतमानसाः ॥ पुष्पवृष्टिं चकारोच्चैर्जीवजीवेति चाब्रुवन् ॥ २६ ॥ स्तुत्वैवं गिरिजापोतं सम्पूज्य च पृथक् पृथक् ॥ पुनरूचुस्तपोनिष्ठा मिथस्ते हर्षपूरिताः ॥ २७ ॥ अहो श्रुतानि मासानां माहात्म्यानि बहून्यपि ॥ २८ ॥ ज्येष्ठमासस्य चैकस्य वारस्य न तुलां

जीव (जीवित रहो २) आशीर्वाद देने लगे। इस तरह गिरिजापोत (स्कन्द) जी की स्तुति कर पृथक् पृथक् पूजन किया ॥ २७ ॥ और प्रसन्न होकर वे तपोनिष्ठ परस्पर पुनः बोले कि अहो (आश्चर्य है)! हमलोगों ने मासों के बहुत से माहात्म्यों को सुना ॥ २८ ॥ परन्तु ज्येष्ठ मास के एक दिन के साथ भी उनकी तुलना नहीं हो सकती ॥२९॥

इस प्रकार विचार कर श्रेष्ठ ज्येष्ठ मास में स्नान अर्चन क्रिया को सब प्रयत्न से अपने विभव के अनुसार सभी लोगों ने

भवेत् ॥ २९ ॥ विचिन्त्येवं ततः श्रेष्ठे ज्येष्ठे स्नानार्चनक्रियाम् ॥ चक्रुः सर्वे प्रयत्नेन यथाविभवसम्भवैः ॥ ३० ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

किया ॥ ३० ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥



स्कन्द जी बोले कि हे ऋषि लोग ! इस ज्येष्ठ मास के आने पर विष्णु भगवान् के मन्दिर में दशहरा व्रत करना चाहिये और प्रतिपत् से लेकर दशमी पर्यन्त तिथियों में भागीरथी (गङ्गा) जी के जल में स्नान करना चाहिये ॥ १ ॥ ऋषि लोग बोले कि हे स्कन्द जी ! इस व्रत का दशहरा नाम क्यों हुआ ? और प्रतिपत् तिथि में स्नान क्यों करना ? तथा ज्येष्ठ मास में व्रत क्यों करना ? यह सब मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥ २ ॥ स्कन्द जी बोले कि हे

स्कन्द उवाच ॥ मासेऽस्मिन् विष्णुनिलये कार्यं दशहराव्रतम् ॥ स्नानं भागीरथीतोये कार्यं प्रतिपदादिषु ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथं दशहरा नाम स्नानं प्रतिदिने कुतः ॥ कस्माज्ज्येष्ठे च कर्तव्यं तत्सर्वं विस्तराद्वद ॥ २ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः ॥ गरानन्दे व्यतीपाते कन्याचन्द्रे वृषे रवौ ॥ ३ ॥ स्नानदानादिकं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ भुक्त्वा च विविधान् भोगान् अन्ते हरिपुरं व्रजेत् ॥ ४ ॥ अदत्तानामुपादानं हिंसा

ऋषि लोग ! ज्येष्ठ मास, शुक्लपक्ष, दशमी तिथि, बुधवार, हस्त नक्षत्र, गर करण, आनन्द योग, व्यतीपात योग, कन्या राशि के चन्द्रमा और वृषराशि के सूर्य होने पर ॥ ३ ॥ स्नान दान पूजन आदि करने में मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और इस लोक में विविध भोगों को भोगकर अन्त (मृत्यु) होने पर विष्णुलोक को जाता है ॥ ४ ॥ अन्याय से पराये द्रव्य का हरना, अशास्त्रीय (शास्त्र विरुद्ध) हिंसा करना, पराई स्त्री से मैथुन करना, यह तीन

प्रकार का अशुभ फलदायक कायिक कर्म कहाता है ॥ ५ ॥ कठोर वचन बोलना, झूठ बोलना, मुह पीछे किसीका दोष कहना, राजा की देश की पुर की निष्प्रयोजन बेमतलब की बातों का कहना, ऐसे चार (४) प्रकार का अशुभ फल देने वाला वाचिक कर्म कहा है ॥ ६ ॥ पराये धन को अन्याय से ग्रहण करूँगा ऐसा चिन्तवन करना, दूसरे के अनिष्ट की इच्छा करना, परलोक नहीं है देह ही आत्मा है ऐसे मिथ्या अभिनिवेश करना, ये तीन प्रकार का मानस

चैवाविधानतः ॥ परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ५ ॥ पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः ॥ असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ ६ ॥ परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम् ॥ वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ७ ॥ एतानि दशपापानि हरते दर्शनादिभिः ॥ तस्माद्दशहरा प्रोक्ता मुनिभिः पूर्वदर्शिभिः ॥ ८ ॥ दशजन्मार्जितैः पापैर्ब्रह्महत्यासमैरपि ॥ मुच्यते स्नानमात्रेण तस्माद्दशहरा स्मृता ॥ ९ ॥ गङ्गां सम्पूज्य यत्नेन मन्त्रैरेतैः

पाप कर्म कहा जाता है ॥ ७ ॥ ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन दर्शन स्पर्श मज्जन पान अर्चन आदि करने से ऊपर कहे गये दशविध पापों का नाश हो जाता है, इसीलिये पूर्वदर्शी मुनियो ने इसका दशहरा नाम कहा है ॥८॥ और ज्येष्ठ शुक्ल दशमी के दिन स्नानमात्र से ब्रह्महत्या के समान दश जन्मों के अर्जित पापों से मुक्त हो जाता है, इसलिये इसका दशहरा नाम हुआ ॥ ९ ॥ दशहरा के दिन इन पुरातन मन्त्रों से श्री गङ्गा जी का यत्नपूर्वक पूजन

करे। मन्त्र का अर्थ—शिवा को नमस्कार है, शान्ता को और नारायणी को नमस्कार है ॥ १० ॥ दशविध पापों को नाश करने वाली को और गङ्गा जी को नमस्कार है। उसी स्थान में महान् ओजस्वी दश (१०) देवताओं का पूजन करे ॥ ११ ॥ दश देवताओं के नाम—नारायण, महेश, ब्रह्मा, भास्कर (सूर्य), भगीरथ, हिमवान्, स्कन्द,

पुरातनैः ॥ नमः शिवायै शान्तायै नारायण्यै नमो नमः ॥ १० ॥ दशपापहरायै च गङ्गायै ते नमो नमः ॥ तत्रैव पूजयेद्देवान् दशसंख्यान् महौजसः ॥ ११ ॥ नारायणं महेशं च ब्रह्माणं भास्करं तथा ॥ भगीरथं हिमवन्तं स्कन्दं च गणनायकम् ॥ १२ ॥ तथा चण्डीं च सोमं च पूजयित्वा स्वशक्तितः ॥ फलैश्च दशसंख्याकैरर्चयित्वा पृथक् पृथक् ॥ १३ ॥ दश विप्रान् ततो दत्त्वा तिलांश्च दश प्रसृतिम् ॥ गङ्गायै सर्वरूपिण्यै मन्त्रेणानेन चार्चयेत् ॥ १४ ॥ तथैव दशसंख्याकान् सक्तुपिण्डान् जले क्षिपेत् ॥ गुडपिण्डान् ततो दत्त्वा दशसंख्यान् स्वशक्तितः ॥ १५ ॥

गणनायक (गणेश) ॥१२॥ चण्डी, सोम, इनका अपनी शक्ति के अनुसार पूजन कर दश फलों से पृथक् पृथक् पूजन करे ॥ १३ ॥ दश पसर तिल दश ब्राह्मणों को देकर 'गङ्गायै सर्वरूपिण्यै नमः' इस मन्त्र से पूजन करे ॥ १४ ॥ और सतुआ का दश पिण्ड बनाकर जल में छोड़े तथा स्वशक्ति से गुड़ के दश पिण्डों को देवे ॥१५॥ यथाशक्ति सुवर्ण का

मत्स्य, कच्छप, मण्डूक, शिशुमार आदि बनाकर अथवा चाँदी का अथवा अन्य धातु का बनाकर ॥ १६ ॥ अथवा पिसान का बनाकर पूजन करे और उनको जल मे छोड़ देवे । बाद दश सेर तिल, व्रीहि (धान्य) और यव ब्राह्मणों को देवे ॥ १७ ॥ तथा ब्राह्मणों को यथाविधि दश गौ का दान कर देवे । इस विधान से वित्तशाठ्य (धन की शठता) का त्याग कर पूजन दान करे ॥ १८ ॥ और पक्वान्न पायस का भोजन ब्राह्मणो को करावे तो दश जन्म के

मच्छकच्छपमण्डूकशिशुमारादिकं तथा ॥ कृत्वा स्वर्णमयान् शक्त्या राजतानन्यधातुजान् ॥१६॥ यद्वा पिष्टमयान् कृत्वा समभ्यर्च्य जले क्षिपेत् ॥ ततो दशप्रस्थमितान् तिलान् व्रीहियवांस्तथा ॥ ॥ १७ ॥ गाश्चैव दशसंख्याकान् ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ॥ एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ १८ ॥ तथैव भोजयेद्विप्रान् पक्वान्नैः पायसैरपि ॥ दशजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १९ ॥ ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्राप्य प्रतिपदां तिथिम् ॥ दशाश्वमेधिके स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २० ॥ एवं सर्वासु तिथिषु क्रमस्नायी नरोत्तमः ॥ आशुक्लपक्षदशमीं

अर्जित पापों से मुक्त हो जाता है, इसमे संशय नहीं है ॥ १९ ॥ ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपत् तिथि से लेकर दशमी पर्यन्त तिथियों में दशाश्वमेध तीर्थ मे स्नान करने से समस्त पापों से छूट जाता है ॥ २० ॥ ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपत् तिथि से लेकर प्रतिजन्म के पापों का नाश करने वाली दशमी तिथि पर्यन्त सभी तिथियों में

क्रम से स्नान करने वाला मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है ॥ २१ ॥ और दशहरा के दिन दशाश्वमेधेश्वर के लिङ्ग का दर्शन करने से दश जन्म के अर्जित पापों का नाश हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ २२ ॥ और दशयोगा नाम से इसकी प्रसिद्धि है । दशमी के दिन दैववश किसी समय दश योगों का सम्बन्ध हो अथवा न हो, अकेला ज्येष्ठ मास ही सर्वश्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ समस्त योगों से रहित होने पर भी केवल ज्येष्ठ मास ही निश्चय रूप से फलों से पूर्ण मनोरथ

प्रतिजन्माघनाशिनीम् ॥ २१ ॥ लिङ्गं दशाश्वमेधस्य दृष्ट्वा दशहरातिथौ ॥ दशजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २२ ॥ दशयोगा इतिख्याता कदाचिद्दैवयोगतः ॥ लभ्यते वा न वा तत्र ज्येष्ठ एको महत्तरः ॥ २३ ॥ केवलेऽपि तथा ज्येष्ठे सर्वयोगविवर्जिते ॥ एकान्ततो विजानीयात् फलपूर्णमनोरथम् ॥ २४ ॥ यथा उडुगणैः सार्धं शुशुभेऽसौ निशाकरः ॥ तथैव योगसम्पन्नो ज्येष्ठो भाति न तत्वतः ॥ २५ ॥ ऋते शुक्रं विना योगा विफलाः स्युर्न संशयः ॥ २६ ॥

इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

करने वाला होता है ऐसा समझे ॥ २४ ॥ जैसे आकाश में नक्षत्रगणों के साथ चन्द्रमा शोभित होता है वैसे ही योगों के साथ ज्येष्ठ मास शोभित होता है । केवल योग शोभित नहीं होते है ॥ २५ ॥ विना ज्येष्ठ मास के एकत्रित समस्त योग निष्फल होते है, इसमें संशय नहीं है ॥ २६ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ऋषि लोग बोले कि हे स्कन्द जी ! सभी योग पापों के नाश करने वाले और पुण्य को देने वाले समान कहे हैं, उनमें से ज्येष्ठ मास को कैसे श्रेष्ठ कहा ? सो विधिपूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥ स्कन्द जी बोले कि हे ऋषि लोग ! ज्येष्ठ मास शुक्ल पक्ष की हस्त नक्षत्र से युक्त दशमी तिथि के दिन लोक प्रसिद्ध जाह्नवी (गङ्गा) स्वर्ग से अवतीर्ण हुई ॥ २ ॥ राजा भगीरथ के तप से पापनाशिनी गङ्गा लाई गई, इसलिये ज्येष्ठ मास सबों में श्रेष्ठ और शेष योग

ऋषय ऊचुः ॥ सर्वे योगाः समाः प्रोक्ताः पुण्यदाः पापहारिणः ॥ श्रेष्ठस्तेषां कथं ज्येष्ठो कथयस्व विधानतः ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ॥ तस्यां स्वर्गावतीर्णेयं जाह्नवी लोकविश्रुता ॥ २ ॥ भगीरथस्य तपसाऽऽनीता पापविनाशनी ॥ अतः सर्वोत्तमो ज्येष्ठो योगाः सहचरा मताः ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ कस्माद्भगीरथो राजा चकार तप उत्तमम् ॥ आनीता जाह्नवी कस्मात् कुत्र पूर्वं स्थिता सती ॥ ४ ॥ स्कन्द उवाच ॥ विष्णोर्ना-

ज्येष्ठ मास के सहचर (अनुचर) हैं ॥ ३ ॥ ऋषि लोग बोले कि हे स्कन्द जी ! राजा भगीरथ ने तप क्यों किया ? और जाह्नवी (गङ्गा) क्यों लाई गईं ? तथा इस पृथिवी पर पहिले कहाँ स्थित हुईं ? ॥ ४ ॥ स्कन्द जी बोले कि हे ऋषि लोग ! जब समस्त ब्रह्माण्ड का निर्माण करने के निमित्त विष्णु भगवान् के नाभिकमल से (कमलभू) ब्रह्मा प्रकट हुए उस समय ब्रह्मा एक हाथ से कमण्डलु और अन्य हाथों से वेदों को धारण किये थे। तीनों लोक को

पापरहित करने के लिये तथा पवित्र जो वहाँ का जल था वही विश्वजननी सर्वदा पवित्र करने वाली गङ्गा कही जाती हैं ॥५॥ ब्रह्मा के कमण्डलु से प्रकट होनेवाली गङ्गा ब्रह्मा के साथ विष्णु भगवान् से प्रकट हुई परन्तु विष्णु ने कमण्डलु से नहीं निकाला और बहुत वर्ष बीत गये ॥ ६ ॥ किसी समय दैत्यों ने तीनों लोक को जल से प्लावित कर दिया, उस समय इन्द्रादि समस्त देवताओं ने मधुसूदन भगवान् का पूजन किया ॥ ७ ॥ पूजन से प्रसन्न हरि (मधुसूदन) ने

भिसरोरुहात् कमलभूर्जातो यदा निर्मितुं ब्रह्माण्डं सकलं कमण्डलुधरो वेदांस्तथा चापरैः ॥ हस्ताब्जैर्भुवनत्रयं विकलुषं कर्तुं तथा पावनं तत्रत्याम्बु तदेव विश्वजननी गङ्गा सदा पावनी ॥५॥ कमण्डलुसमुद्भूता ब्रह्मणा सह शार्ङ्गिणः ॥ नचैवोद्घाटिता तेन वत्सरैर्बहुभिर्गतैः ॥ ६ ॥ कदाचित् समये दैत्यप्लावितं भुवनत्रयम् ॥ तदा सेन्द्रादिदेवैश्च पूजितो मधुसूदनः ॥ ७ ॥ कमण्डलुस्थितैस्तोयैः स्थापयामास तद्धरिः ॥ ततस्तच्चरणाम्भोजान्निःसृता चौघरूपिणी ॥ ८ ॥ सा धृता शम्भुना तूर्णं न यावद्दृष्टिगोचरा ॥ कृत्वा जटानां सुदृढमालवालं तपोधनाः ॥ ९ ॥ द्विजरूपता

कमण्डलु के जल से तीनों लोक को स्थापित किया, तदनन्तर विष्णु भगवान् के चरणकमल से गङ्गा ओघ (प्रवाह) रूप होकर निकलीं ॥ ८ ॥ हे तपोधन ! जब तक गङ्गा जी दृष्टिगोचर न हुई उसके पूर्व शङ्कर भगवान् ने अपने जटासमूह को सुदृढ़ आलवाल बनाकर उसमे गङ्गाजी को धारण किया ॥ ९ ॥ गङ्गाजी का शिवजी के साथ योग होने से द्विज

(पक्षी) रूप हो गया, तदनन्तर समस्त देवता-वृन्द ने वृषभध्वज (शिवजी) की प्राथना की ॥ १० ॥ तब शङ्कर भगवान् ने अपने जटाभार से गङ्गाजो को छोड दिया, उस समय ओघ (प्रवाह) रूप से जब गङ्गा गर्जती हुईं आकाश को चलीं तब उसका स्वधुंनी स्वर्गङ्गा स्वर्गवाहिनी नाम पड़ा ॥११॥ उस समय राजा भगीरथ दारुण तप करके पितरों की मुक्ति के लिये गङ्गाजी को भूलोक (पृथिवी) मे ले आये ॥ १२ ॥ वहाँ पर शेष आदि के स्तुति करने पर गङ्गाजी

समभवद्गङ्गायाः शिवयोगतः ॥ ततः स देवतावृन्दैः प्रार्थितो वृषभध्वजः ॥ १० ॥ मुक्तवान् स्वजटाभाराच्चला चैवौघरूपिणी ॥ सा स्वधुंनी समाख्याता स्वर्गङ्गा स्वर्गवाहिनी ॥ ११ ॥ ततो भगीरथो राजा तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ॥ आनयामास भूलोकं पितॄणां मुक्तिहेतवे ॥ १२ ॥ तत्र शेषादिभिस्तुत्वा गता पातालगह्वरम् ॥ भगीरथेन साऽऽनीता ततो भागीरथी स्मृता ॥१३॥ सा पीता जह्नुराज्ञा वै मुक्ता श्रोत्रात्तु दक्षिणात् ॥ परुषा जाह्नवी सापि विख्याता जगतीतले ॥ १४ ॥ यतस्त्रिलोके वहती पाति लोकत्रयं त्वियम् ॥ अतस्त्रिपथगेत्येवं नामाभूज्जगतीतले

पाताल गुफा को चली गईं, उस पाताल से राजा भगीरथ के द्वारा लाई गईं इसलिये गङ्गजीका भागीरथी नाम पड़ा॥ १३॥ जब राजा जह्नु ने गङ्गा का पान कर लिया और उसे दक्षिण श्रोत्र (कान) से मुक्त किया तब उसका जगतीतल में परुषा जाह्नवी नाम पड़ा ॥१४॥ यह गङ्गा तीनों लोक मे भ्रमण करती है और तीनों लोक की रक्षा करती है, इसलिये

जगतीतल में गङ्गा का त्रिपथगा नाम पड़ा ॥ १५ ॥ गङ्गा के नाम—कमण्डलुमसुद्भूता, विष्णुपादसमुद्भवा, गङ्गा, हरजटोद्भूता, स्वधुनी, लोकपावनी ॥ १६ ॥ भागीरथी, जाह्नवी, तिस्रोता, भीष्मसू, मन्दाकिनी, भागवती, त्रैलोक्यवासिनी हैं ॥ १७ ॥ ॥ इस तरह गङ्गा के अनेकों शत सहस्र नाम है, उनमें से ये उक्त तेरह (१३) मुख्य नाम हैं

॥ १५ ॥ कमण्डलुसमुद्भूता विष्णुपादसमुद्भवा ॥ गङ्गा हरजटोद्भूता स्वधुनी लोकपावनी ॥१६॥
भागीरथी जाह्नवीति त्रिस्रोता भीष्मसूरपि ॥ मन्दाकिनी भागवती तथा त्रैलोक्यवासिनी ॥१७॥
एवं नामानि बहुशो शतानि च सहस्रशः ॥ तत्राप्येतानि मुख्यानि गदितानि त्रयोदश ॥ १८ ॥
त्रयोदशानि नामानि ये पठन्ति दिवानिशम् ॥ तेषां भागीरथीतीरे वास एव न संशयः ॥ १९ ॥
स्नानकाले पठेन्नित्यं गङ्गास्नानफलं भवेत् ॥ एभिर्नामपदैर्नित्यं नमस्कारं प्रकुर्वते ॥ २० ॥ ते
सर्वे पापनिर्मुक्ता अन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन

॥ १८ ॥ जो लोग इन तेरह (१३) नामों को दिन रात्रि मे पढते है उनका वास भागीरथी (गङ्गा) के तट में होता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १९ ॥ जो नित्य स्नान के समय इन नामों को पढते है उनको गङ्गा-स्नान का फल होता है। इन नाम के पदों से जो नित्य नमस्कार करते है ॥ २० ॥ वे सब पापों से मुक्त होकर अन्त में शिवपुर (कैलास) को जाते है। महायात्रा (मृत्यु) के समय निश्चल मन से, भक्ति से, योग (चित्तवृत्ति के निरोध)

बल से युक्त हो जाते हैं वे लोग स्वर्गलोक को लाँघते हुए प्रधान पुरुष (ब्रह्म) के परम पद को चले जाते हैं ॥२१॥ जो लोग अन्त (मृत्यु) समय मे इन नामपदों से अभिमन्त्रित कर जल का अपने शरीर पर सिञ्चन करते हैं उनको पातकी होने पर भी यमराज के दूत नहीं छूते हैं ॥ २२ ॥ अहो ! गङ्गा के माहात्म्य कहने मे कौन समर्थ हो सकता

चैव ॥ २१ ॥ ते स्वर्गलोकं समतीत्य यान्ति परं प्रधानस्य पदं हि पुंसः ॥ एभिस्तथा नामपदैर्जलानि संमन्त्र्य सिञ्चन्ति तथाऽवसाने ॥ २२ ॥ तानर्कसूनोर्न कथं च दूताः स्पृशन्ति नो किल्बिषिनोऽपि नूनम् ॥ अहो माहात्म्यं गङ्गायाः क ईशः कथनेऽप्यलम् ॥ २३ ॥ वक्तव्यं वदनं चेत् स्यान्मशका इव चाम्बरे ॥२४॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ॥११॥

है ! । हाँ, यदि कहने के लिये आकाश के असंख्य मशक (मच्छड़) के समान अधिक संख्या मे मुख हों तो वह मनुष्य गङ्गामाहात्म्य के कहने में समर्थ हो सकता है ॥ २३ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥



स्कन्द जी बोले कि हे विप्र ! मैं इस समय गङ्गाजी का कथानक कहूँगा, और राजा भगीरथ जिसके लिये गङ्गा को ले आये है ॥ १ ॥ वह सब भी कहूँगा, आप चित्त को निश्चल कर श्रवण करें । प्रथम सूर्यकुल में उत्पन्न परम धार्मिक राजा ॥ २ ॥ सुरासुर का निबर्हण करने वाला सगर नाम से विख्यात हुआ। और वह सगर नीति का वेत्ता तथा नीति में कुशल था और अयोध्या में अपना निवास स्थान बनाकर पुर के समान सात द्वीपों से युक्त समस्त

स्कन्द उवाच ॥ अधुना कथयिष्यामि गङ्गायाश्च कथानकम् ॥ राज्ञा भगीरथेनापि आनीता यस्य हेतवे ॥ १ ॥ शृणुष्व तत्समग्रं च कृत्वा चित्तं सुनिश्चलम् ॥ पुरा रविकुलोत्पन्नो राजा परमधार्मिकः ॥ २ ॥ सगरेति च विख्यातः सुरासुरनिबर्हणः ॥ अयोध्यां वसतिं कृत्वा सप्त-द्वीपवतीं महीम् ॥ ३ ॥ नीतिज्ञो नीतिकुशलः शशास पुरनिर्मितम् ॥ औरसानिव पुत्रांश्च मातेव सकलं जगत् ॥ ४ ॥ शतपुत्रैर्वृतो भाति फणाभिरिव भूधरः ॥ सागरा इव विख्याताः सर्वे समपराक्रमाः ॥ ५ ॥ बलेन मरुता तुल्या बुद्ध्या वाचस्पतेः समाः ॥ शरासने भीष्मनिभा-

पृथिवी का शाशन करता था तथा औरस पुत्रों का माता के समान वह राजा सगर समस्त जगत् का पालन करता था ॥ ३–४ ॥ और सहस्र फणाओं से युक्त शेष के समान वह राजा सगर शत (साठ हजार) पुत्रों से युक्त होकर शोभित होता था । राजा सगर के साठ हजार पुत्र सागर (समुद्र) के समान विख्यात थे और सब समान पराक्रमशाली थे ॥ ५ ॥ बल में वायु के समान, बुद्धि में बृहस्पति के समान, धनुषधारियों में भीष्म के समान और

तेज में सूर्य के समान थे ॥ ६ ॥ वे साठ हजार सगर के पुत्र समस्त विद्याओं मे कुशल तथा धर्म मे परायण थे, उन साठ हज़ार पुत्रों के साथ राजा सगर ने श्रेष्ठ यज्ञ आरम्भ किया ॥ ७ ॥ जो कि अश्वमेध नाम से प्रसिद्ध यज्ञ कहा जाता है । राजा सगर ने वसिष्ठ ऋषि के सहायता से विधिवत् सङ्कल्प कर यज्ञ का घोड़ा छोड़ा ॥ ८ ॥ अनेक सेनाओं से परिशोभित, और अन्य सेनाचरों से तथा वीर पुत्रों से परिवारित यज्ञाश्व के पीछे राजा सगर के साठ हजार

स्तेजसा भास्करोपमाः ॥ ६ ॥ सर्वविद्यासु कुशलास्तथा धर्मपरायणाः ॥ तैरावृतो नृपवरो आरेभे सत्रमुत्तमम् ॥ ७ ॥ अश्वमेधेति विख्यातं वसिष्ठेन सहायवान् ॥ सङ्कल्पं विधिवत् कृत्वा उत्सस-र्जाथ वाजिनम् ॥ ८ ॥ अन्वगच्छंश्च चमुभिर्बहुभिः परिशोभितम् ॥ अन्यैः सेनाचरैर्वीरैः पुत्रैश्च परिवारितम् ॥ ९ ॥ देशाद्देशान्तरं गत्वा श्रममाणो निजेच्छया ॥ यैर्यैश्च राजविख्या-तैर्धृतोऽसौ वाजिनां वरः ॥ १० ॥ तान् तान् जित्वा स्ववीर्येण मोचिताः शरणागताः ॥ एवं सर्वेऽपि राजानो वसुधातलवासिनः ॥ ११ ॥ करभारभरैः क्रान्ता रासभोष्ट्राश्च वाजिनः ॥

पुत्र चले ॥ ६ ॥ स्वेच्छापूर्वक एक देश के बाद दूसरे देश को जाता हुआ थकाहट से युक्त वह श्रेष्ठ घोड़ा जिन-जिन प्रख्यात राजाओं से पकड़ा गया ॥ १० ॥ उन उन राजाओं को अपने वीर्य से जीत कर और अपने शरणागत होने पर छोड़ दिया । इस तरह भूमण्डल के वासी समस्त राजाओं को ॥ ११ ॥ कर के भार से युक्त कर छोड़ दिया

और उन राजाओं से प्राप्त रासभ (गदहा), ऊँट, घोड़ा, हाथी और शकट आदि सामान अयोध्या में लाये गये
॥ १२ ॥ तदनन्तर विधिपूर्वक यज्ञ कार्य समाप्त कर ऋत्विजों को दक्षिणा दी । दश दिशाओं से लाया गया यावत्
द्रव्य वस्तु तथा अपने राष्ट्र का जो कुछ द्रव्य वस्तु था ॥ १३ ॥ उन समस्त वस्तुजात को कामना रहित होकर
ब्राह्मणश्रेष्ठों को दे दिया । इस तरह निन्यानबे (९९) अश्वमेध यज्ञ के होने पर ॥ १४ ॥ स्वर्ग के मालिक इन्द्रदेव

गजाश्च शकटाश्चैव अयोध्यायां समाययुः ॥ १२ ॥ समाप्य विधिवद्यज्ञं ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां ददौ ॥ आनीय दशदिग्भ्यश्च द्रव्यजातं स्वराष्ट्रजम् ॥ १३ ॥ तत्सर्वं विप्रमुख्येभ्यो ददौ कामविवर्जितः ॥ एवं क्रतुशते जाते एकोनरहिते तदा ॥ १४ ॥ तदेव चकितो जातो शतमन्युर्दिवस्पतिः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि त्राता मां को भवेदिह ॥ १५ ॥ एवं संचिन्त्य मनसि युद्धाय प्रययौ तदा ॥ देवसैन्यैः परिवृतो भुवं यातः क्षणार्धतः ॥ १६ ॥ सागरैः सहसा दृष्टो देवानामधिपः स्वयम् ॥ उद्युक्तो अश्वहरणे आगतास्ते तदन्तिकम् ॥ १७ ॥ नमस्कृत्वा साम-

चकित हो गये, और घबडा कर बोले कि इस समय मैं कहाँ जाऊँ ?, क्या करूँ ?, इस संसार में मेरा रक्षक कौन होगा ?
॥ १५ ॥ इस तरह मन में विचार कर युद्ध के लिये तत्पर हो गये और आधा क्षण मे समस्त देवसैनिकों के साथ
पृथिवी पर आये ॥ १६ ॥ उन देवाधिप इन्द्र को सहसा सगर-पुत्रों ने देखा, जो कि स्वयं इन्द्र यज्ञाश्व के हरण करने
के लिये तत्पर हैं । यह देखकर साठ हजार सगर के पुत्र इन्द्र के समीप आये ॥ १७ ॥ और नमस्कार कर शान्ति के

वचन बोले कि हे स्वामिन्! हे शचीपते! निज लोक से आपका यहाँ कैसे आना हुआ? ॥ १८ ॥ सगर पुत्रों के इन वचनों को सुनकर क्रोध से ओठ कपाते हुए इन्द्र बोले कि मेरा शाश्वत इन्द्रपद हरण करने के लिये तुम सब इस समय उद्यत हो ॥ १९ ॥ और वञ्चकों के समान श्रेष्ठ तथा मधुर वचन बोलते हो। यह कहकर देवता लोग सहसा शत्रु-

वाक्यमुचुस्ते सगरात्मजाः ॥ किमर्थमागतः स्वामिन् निजलोकाच्छचीपते ॥ १८ ॥ एवं तेषां वचः श्रुत्वा क्रोधप्रस्फुरिताधरः ॥ इन्द्र उवाच ॥ पदं हर्तुं समुद्युक्ताः शाश्वतं मम सांप्रतम् ॥१९॥ वञ्चका इव भाषन्तो मधुरं परमं वचः ॥ उक्त्वैव सहसा देवा निजघ्नुः परसैनिकान् ॥ २० ॥ ततः प्रवृत्तं तुमुलं युद्धं सर्वभयप्रदम् ॥ बाणैर्बाणांस्तथा वीराः शस्त्रैः शस्त्रान् न्यवारयन् ॥२१॥ ध्वान्तं तत्राभवद्घोरं बाणैर्व्याप्ता दिशो दश ॥ न बोधः स्वात्मपरयोर्निजघ्नुः सर्व एव ते ॥ २२ ॥ देवा देवान् समाघ्नन्ति सागरान् सगरात्मजाः ॥ एवं न बुबुधे तत्र स्वकीयमथ वा

सैनिकों पर प्रहार करने लगे ॥२०॥ तदनन्तर सर्वभयप्रद तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया और वीर लोग बाणों से बाण, शस्त्रों से शस्त्र का निवारण करने लगे ॥ २१ ॥ वहाँ युद्ध के कारण अन्धकार हो गया और दश दिशायें बाण से व्याप्त हो गईं। अपने तथा शत्रुदल के कौन है? इसका ज्ञान न रहा, इस तरह वे सब परस्पर युद्ध करने लगे ॥२२॥ देवता लोग देवताओं को और सगर पुत्र सगर पुत्रों को मार रहे थे। इस प्रकार उस युद्ध मे अपना पराया का

ज्ञान नहीं होता था ॥ २३ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जब देवताओं के बाणभय से त्रस्त (भयभीत) सगरपुत्रों की सेना अपनी प्राणरक्षा के लिये दश दिशाओं में भाग गई ॥ २४ ॥ तब क्रोध से सन्तप्त सगरपुत्रों ने दैत्यास्त्र को छोड़ने के लिये धनुष पर चढ़ाया । यह देखकर देवतावृन्द भय से भाग गये ॥ २५ ॥ उस संग्राम मे हाथी पर सवार एक इन्द्र और साठ हजार सगरपुत्र रह गये । जब उन सगरपुत्रों के साथ इन्द्र युद्ध करने मे समर्थ न हुए तब वहाँ से भाग गये

परान् ॥ २३ ॥ देवबाणभयत्रस्ता यदा सागरवाहिनी ॥ याता दशदिशं प्राणान् रक्षितुं द्विज-पुङ्गवाः ॥ २४ ॥ सागराः कोपसन्तप्ता दितिजास्त्रमयोजयन् ॥ तद्भयाद्देवतावृन्दं पलायनपरं भवत् ॥ २५ ॥ इन्द्रैको गजमारूढः सागरास्ते सहस्रशः ॥ तेभ्यो योद्धुं न शक्तोऽभूत् पलाय-नपरोऽभवत् ॥ २६ ॥ चिन्तया परया व्याप्तो वासुदेवमुपाययौ ॥ देवराजे गते युद्धात् सगरा-त्मजसैनिकाः ॥ २७ ॥ समाजग्मुर्निवेशाय स्वामिनो गौरवादलम् ॥ दत्त्वा तेषां सुबहूनि वस्त्रा-ण्याभरणानि च ॥ २८ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ २६ ॥ तीव्र चिन्ता से व्याप्त इन्द्र, श्री विष्णु भगवान् के पास गये । इधर इन्द्र के चले जाने के बाद सगरपुत्र के सैनिक ॥ २७ ॥ अपने वासस्थान को लौट आये । उनको सगरपुत्रों ने स्वामी के गौरव के लिये बहुत सा वस्त्र भूषण देकर प्रसन्न किया ॥ २८ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

स्कन्दजी बोले कि हे विप्रलोग ! जब इन्द्र ने राजा सगर के अश्वमेध यज्ञ का समाचार वगैरह श्रीविष्णु भगवान् से निवेदन किया तब विष्णु भगवान् मन से ध्यान कर इन्द्र से निश्चित वचन बोले ॥ १ ॥ श्रीविष्णु भगवान् ने कहा कि हे इन्द्र ! मुझको और समर्थ श्रीशिवजी को उन लोगों ने नहीं बुलाया, इस लिये मैं तुमसे उपाय बताता हूँ,

स्कन्द उवाच ॥ निवेद्य वासुदेवाय सर्वं सगरचेष्टितम् ॥ भावितं मनसा ध्यात्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच ॥ अहमेव शिवो वापि नाहुतेशस्तु तैः सह ॥ अतस्ते कथयिष्यामि तत् कुरुष्व यथामति ॥ २ ॥ इमामदृश्यकरणीं विद्यां दास्यामि सुव्रत ॥ तां गृहीत्वा पुनर्याहि एकाकी निर्भयः शुचिः ॥ ३ ॥ तां जपस्व विधानेन अश्वं हृत्वा प्रयत्नतः ॥ कपिलस्यान्तिकं गच्छ तथैव मौनमास्थितः ॥ ४ ॥ तत्रैव स्थापयित्वा तु दृष्ट्वा वाजिं शुभावहम् ॥

तुम यथामति उस उपाय को करो ॥ २ ॥ हे सुव्रत ! मैं तुमको इस अदृश्य करनेवाली विद्या को देता हूँ, तुम पवित्र होकर उस विद्या को ग्रहण करो और एकाकी निर्भय होकर पुनः जाओ ॥ ३ ॥ विधि से उस विद्या का जप करो, सावधानी के साथ यज्ञाश्व का हरण करो और उसी तरह मौनपूर्वक कपिल ऋषि के समीप जाओ ॥ ४ ॥ तथा

देखकर वहीं शुभकारी यज्ञाश्व को रखकर अपने स्वर्ग को जाओ और पूर्ववत् अपना काम करो ॥ ५ ॥ अन्यथा वे सब मेरे साथ तुमको मारेंगे इसमे संशय नहीं है। विष्णु भगवान् के वचन सुनकर विधिपूर्वक इन्द्र ने स्नान किया ॥ ६ ॥ और अदृश्यकरणी विद्या को ग्रहणकर प्रथम मधुसूदन भगवान् को प्रणाम किया और पूछा कि हे विष्णो !

ततो गच्छ निजं स्वर्गं स्वकार्यं कुरु पूर्ववत् ॥ ५ ॥ नो चेत्त्वां ते हनिष्यन्ति मया सह न संशयः ॥
इति वाक्यं भगवतः श्रुत्वा स्नात्वा विधानतः ॥ ६ ॥ अदृश्यकरणीं विद्यां जग्राह मधुसूदनम् ॥
प्रणम्यादौ पुनः प्राह कुत्राऽऽस्ते कपिलो मुनिः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कलिङ्गात् पूर्वदिग्भागे
वसुधाया गुहान्तरे ॥ निर्मितं भूगृहं तेन पातालसदृशं महत् ॥ ८ ॥ तत्राऽऽस्ते ध्यानसम्पन्नो
कपिलो मुनिनां वरः ॥ श्रुत्वैव भगवद्वाक्यमिन्द्रोऽभ्यागाद्धयान्तिकम् ॥ ९ ॥ जपन् भगवतोद्दिष्टां

कपिल मुनि कहाँ पर है ? ॥ ७ ॥ श्रीविष्णु भगवान् बोले कि हे इन्द्र ! कलिङ्ग से पूर्व दिशा में पृथिवी के अन्दर गुफा में कपिल ऋषि ने पाताल के समान महान् भूगृह बनाया है ॥ ८ ॥ उस भूगृह में ध्यानमग्न होकर मुनिश्रेष्ठ कपिल मुनि रहते हैं। विष्णु भगवान् के वचन को सुनकर इन्द्र यज्ञाश्व के समीप गये ॥ ९ ॥ और विष्णु भगवान् से उप-

दिष्ट विद्या का ऋषि देवता के सहित जप करते हुये यज्ञाश्व को लेकर शीघ्र चले गये, और उस समय किसी को
मालूम नहीं हुआ ॥ १० ॥ एकान्त में ध्यानमग्न कपिल मुनि को देखकर इन्द्र ने विधिवत् प्रणाम किया और वहां
हयश्रेष्ठ (यज्ञाश्व) को बाँधकर ॥ ११ ॥ इन्द्र भी अपने नगर (स्वर्ग) को चले गये परन्तु चित्त में शङ्का गाभिक

विद्यां सऋषिदेवताम् ॥ गृहीत्वाऽश्वं ययौ तूर्णं न कोऽपि बुबुधे तदा ॥ १० ॥ इन्द्रोऽपि कपिलं
दृष्ट्वा एकान्ते ध्यानमास्थितम् ॥ प्रणम्य विधिवत्तत्र बद्ध्वा तं हयसत्तमम् ॥ ११ ॥ इन्द्रोऽपि
नगरं प्राप चेतसा शङ्कितो भृशम् ॥ गते हयपतौ ते च मिलिता हयरक्षकाः ॥ १२ ॥ नृपं
निवेदयामासुः सर्वे ज्ञानविमोहिताः ॥ क्व गतो केन नीतो वा न विज्ञो वसुधापते ॥ १३ ॥ तेषां
तद्वचनं श्रुत्वा ततः सगरनन्दनाः ॥ ततस्ते दशदिग्भागे द्रष्टुं हयपतिं द्विजाः ॥ १४ ॥
सर्वं महीतलं दृष्ट्वा द्रष्टुं स्वर्लोकमाययुः ॥ नक्षत्रलोकमासाद्य ऐन्द्रीपुरिमथा-

बनी रही । इधर यज्ञाश्व के हरण हो जाने पर हयरक्षक एक साथ ॥ १२ ॥ अज्ञान से मोहित होकर राजा से
आकर कहा कि हे वसुधापते ! यज्ञाश्व कहाँ गया ? अथवा उसको कौन ले गया ? यह हमलोग नहीं जानते ॥ १३ ॥
हे विप्रलोग ! हम रक्षकों के वचन को सुनकर सगर के पुत्र यज्ञाश्व के अन्वेषण में दश दिशाओं में गये ॥ १४ ॥ समस्त
पृथिवी के तलभाग को देखकर देवलोक देखने के लिये स्वर्ग को आये । बाद नक्षत्र लोक को गये और इन्द्र की पुरी

को गये ॥ १५ ॥ संशय में पड़कर व्याकुल सगरपुत्र इन्द्र के प्रत्येक गृह में और दूसरों के गृह तथा नगर मे ॥ १६ ॥ अटारी, समस्त शाला, वन, उपवन, दिक्पालों के लोक, तदनन्तर ब्रह्मलोक ॥ १७ ॥ कैलास, हिमवान् तथा अन्य अनेकों पर्वत, मेरु पर्वत, समस्त गुफा और शिखर ॥ १८ ॥ गन्धर्व लोक, यक्षलोक तदनन्तर विष्णुलोक मे भी गये।

विशन् ॥ १५ ॥ संशयाऽऽकुलचित्तैस्तैर्द्रष्टुं प्रतिगृहं ततः ॥ एवमिन्द्रस्य चान्येषां तथैव तत्पुराणि च ॥ १६ ॥ प्रासादान्सर्वशालांश्च वनान्युपवनानि च ॥ दिक्पालानामथालोकान् ब्रह्मलोकमतः परम् ॥१७॥ कैलासं हिमवन्तं च तथाऽन्यान् पर्वतान् बहून् ॥ मेरोश्चापि गुहाः सर्वाः शिखराणि च सर्वशः ॥ १८ ॥ गन्धर्वयक्षलोकांश्च विष्णुलोकेऽपि वै गताः ॥ एवं सर्वे समाक्रान्ता लोकाः सगरनन्दनैः ॥ १९ ॥ नापश्यन्तो हयं तत्र ततः पातालमाययुः ॥ पातालानि ततः सप्त दृष्ट्वैव शिविरं ययुः ॥ २० ॥ ततस्ते दुःखिताः सर्वे त्यक्तुं प्राणान् समुद्यताः ॥ भुवं विदारयामासु-

इस तरह वे सगरपुत्र समस्त लोकों मे गये ॥ १९ ॥ परन्तु वहाँ यज्ञाश्व को नहीं देखा तब वे लोग पाताल लोक को गये, वहाँ जाकर सात पातालों को देखा, तदनन्तर अपने शिविर को गये ॥ २० ॥ और सब दुखी हो गये तथा

प्राणत्याग करने को तत्पर वे सब काल से प्रेरित होकर पृथिवी को खोदने लगे ॥ २१ ॥ अकस्मात् उस विवर से मिला हुआ सौ योजन के विस्तार में इन्द्रालय के समान और मनुष्यों से रहित ॥ २२ ॥ दिव्य गह्वर (गुफा) को देखकर सबके सब उस गह्वर में चले गये। वहाँ जाकर कमलरज्जू से बँधा यज्ञाश्व को देखा ॥ २३ ॥ तदनन्तर वहाँपर ध्यान में लीन कपिल नामक ऋषि को देखा, जो कि मन से सृष्टि, संहार, शाप और अनुग्रह करने वाले है ॥ २४ ॥

स्ते सर्वे कालचोदिताः ॥ २१ ॥ अकस्माद्विवरं लग्नं शतयोजनविस्तृतम् ॥ महेन्द्रालयसंकाशं मानवैः परिवर्जितम् ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा ते गह्वरं दिव्यं विविशुश्च सहस्रशः ॥ ददृशुस्ते हयवरं बद्धं कमलदामभिः ॥ २३ ॥ ततः कपिलनामानं ऋषिं ध्यानपरायणम् ॥ मनसा सृष्टिसंहार-शापानुग्रहकारिणम् ॥ २४ ॥ अविज्ञातप्रभावैस्तैर्दस्युं मत्वाऽविचक्षणैः ॥ अनेनैव हतोऽश्वोऽयं ध्यानस्थोऽभूत् भयात्किल ॥ २५ ॥ मद्भयाद्भूगृहं कृत्वा ऋषिवत् दृश्यते खलः ॥ एनं बध्वा प्रयत्नेन नेष्यामो नृपसन्निधिम् ॥ २६ ॥ एवमुक्त्वा तु तैः सर्वैः कृतः कोलाहलो महान् ॥ बध्वा

कपिल ऋषि के प्रभाव से अपरिचित उन मूर्ख सगरपुत्रों ने कपिलमुनि को चोर समझ कर कहा कि इसीने घोड़ा की चोरी की है और भय से यहाँ ध्यान लगाकर बैठा है ॥ २५ ॥ हमलोगों के भय से भूगृह बनाकर दुष्ट यहाँ ऋषिवत् बैठा है। इसको अच्छी तरह बाँधकर राजा सगर के पास ले चलेंगे ॥ २६ ॥ यह कहकर उन शूर सगरपुत्रों ने बड़ा

कोलाहल किया और उन कपिल मुनि को बाँध दिया तथा कतिपय लोगों ने उनपर प्रहार भी किया ॥२७॥ ध्यान को त्याग कर जबतक कपिलमुनि उनको देखते है तबतक वे सब सगरपुत्र कपिलमुनि के नेत्राग्नि से जलकर भस्म

तं कपिलं शूरास्ताडयामासुः केचन ॥ २७ ॥ ध्यानं विसृज्य स मुनिर्यावत्तान् ददृशेऽखिलान् ॥ तावन्नेत्राग्निना दग्धा जाता सगरनन्दनाः ॥२८॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

हो गये ॥२८॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसाद-व्यासेन कृतायां भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥



ऋषय ऊचुः ॥ सर्वा भस्मत्वमापन्ना सगरस्य च सन्ततिः ॥ आरब्धयज्ञो नृपतिः किमकारि षडानन ॥ १ ॥ तत्सैनिकाश्च किं चक्रुस्तत्सर्वं कृपया वद ॥ स्कन्द उवाच ॥ बिलद्वारस्थिता ये च शौनका भयविह्वलाः ॥ २ ॥ बिलाग्निज्वालया तप्ता नृपं याता निवेदितुम् ॥ सर्वं तं कथयामासुः त्रैलोक्यविजयादिकम् ॥ ३ ॥ यदा न दृष्टं कुत्रापि हयरत्नं तवात्मजैः ॥ तदैव खनितं चोर्वीतलं सर्वैः स्वबाहुभिः ॥ ४ ॥ तत्रैव विवरं लग्नं शतयोजनविस्तृतम् ॥ तत्र

ऋषि लोग बोले कि हे षडानन ! (छ मुखधारी) ! राजा सगर की समस्त सन्तति जलकर भस्म हो गई, और राजा सगर का यज्ञ आरब्ध है, हे षडानन ! उस समय राजा सगर ने क्या किया ? ॥ १ ॥ तथा उनके सैनिको ने क्या किया ? यह सब कृपा कर कहिये । स्कन्द जी बोले कि हे शौनकादि ऋषि लोग ! बिल के द्वार पर स्थित सैनिक लोग भय से विह्वल हो गये ॥ २ ॥ और बिल की अग्निज्वाला से सन्तप्त होकर समाचार कहने को राजा सगर के पास गये । वहाँ जाकर सभोंने त्रैलोक्य का विजयादि सब समाचार कहा ॥ ३ ॥ आपके पुत्रों ने जब यज्ञाश्व को कहीं न देखा तब आपके पुत्रों ने अपने हाथ से पृथिवी के तल भाग को खोद डाला ॥ ४ ॥ उसके अन्दर सौ योजन के विस्तार में उस विवर से मिला हुआ गह्वर (गुफा) मिला, उसके अन्दर बहुत से सैनिकों के साथ आपके सब पुत्र

चले गये ॥५॥ और हमलोगों को बिल के द्वार पर स्थित कर दिया । जब उसके अन्दर उन लोगों को बहुत दिन बीत गये, और वहाँ जाकर उन लोगों ने क्या किया? यह समाचार बिल द्वार पर रहने के कारण हमलोगों को नहीं मालूम हुआ ॥६॥ और पाताल के समान वह बिल अग्नि से पूर्ण हो गया और हमलोग उस अग्नि ज्वाला से व्याप्त हो गये तब हमलोग समाचार कहने के लिये आपके पास आये ॥ ७ ॥ हे राजन्! उनकी क्या गति हुई यह हमलोग अत्यन्त मुग्ध

प्रविष्टास्ते सर्वे बहुभिः सैनिकैः सह ॥ ५ ॥ नः स्थाप्य च बिलद्वारे गतास्ते बहुवासरे ॥ तत्र तैः
किं कृतं राजन् न विद्मो द्वारसंश्रिताः ॥ ६ ॥ अकस्माद्वह्निना व्याप्तं बिलं पातालसन्निभम् ॥
वयं तज्ज्वालया व्याप्तास्तेऽभियाता निवेदितुम् ॥७॥ कथं तेषां गतिर्जाता न जानीमो विमोहिताः ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा वज्राहत इवाचलः ॥ ८ ॥ आसन्नपतितो भूमौ विनष्ट इव तत्क्षणात् ॥
अमात्या ऋत्विजाः सर्वे हाहाकारं प्रचक्रमुः ॥९॥ उत्थापयित्वा नृपतिं वारिभिश्च मुखाम्बुजम् ॥

हो जाने के कारण नहीं जानते । यह उन सैनिकों के वचन को सुनकर वज्रप्रहार से पर्वत के समान ॥८॥ पृथिवी पर राजा सगर गिर गये और उसी क्षण में विनष्ट के समान मालूम होने लगे । यह देखकर अमात्यवर्ग तथा सभी ऋत्विग्वर्ग हाहाकार करने लगे ॥ ९ ॥ बाद राजा सगर को उठाकर मुखकमल पर जल से सिञ्चन करने लगे और

राजा को होश में लाकर ऋत्विज आदिकों ने कहा कि ॥ १० ॥ हे नृपशार्दूल ! शोक न करें, हे समस्त प्राणियों के हित मे रत ! शोक नहीं करना चाहिये, क्योंकि पुरुप लोग वीर्यशाली होते हैं ॥ ११ ॥ हे राजन् ! उस बिल के अन्दर आप और हम तथा वीर लोग चलेंगे । यह निश्चय कर यज्ञ का शेष कार्य समाप्त किया ॥ १२ ॥ और सभी लोग उस बिलान्तर्गत जीव के बल पराक्रम को देखने के निमित्त निकल पड़े । माग मे सैनिकों ने जो देवताओं से भी दुष्कर

संसिंच्य सुस्थिरं कृत्वा ऊचुस्ते ऋत्विगादयः ॥ १० ॥ मा शोच नृपशार्दूल सर्वभूतहिते रत ॥
शोकं नैव प्रकुर्वन्ति पुरुषा वीर्यशालिनः ॥११॥ भवान् वयं च वीराश्च गच्छामोऽत्र बिलान्तरे ॥
एवं विनिश्चयं कृत्वा यागशेषं समाप्य च ॥ १२ ॥ सर्वे विनिर्गताः द्रष्टुं तद्बलं तत्पराक्रमम् ॥
मार्गे ते दर्शयामासुर्दैवैरपि सुदुष्करम् ॥ १३ ॥ वसुधायास्तलं सर्वं खनितं कुहरावधि ॥ ब्रूमो
ऋषिगणाः सर्वे नृपभावं विजानतः ॥ १४ ॥ एता गर्ता सुविस्तीर्णा भविष्यन्ति हि सागराः ॥

कर्म है जिसको सगरपुत्रों ने किया था उसको दिखाया ॥ १३ ॥ विवर पर्यन्त पृथिवी का समस्त तल भाग खोदा हुआ देखकर ऋषि लोग बोले कि हे उपस्थितवृन्द ! आपलोग सुनिये । हम सब ऋषिगण राजा सगर के भाव को समझ कर कहते हैं ॥ १४ ॥ ये अधिक विस्तीर्ण जो गर्त (गढ्ढा) हैं वे सब सागर (समुद्र) हो जायँगे । इस तरह

विवाद करते हुए वे सब विवर के समीप आ गये ॥१५॥ और उस विवर के समीप सेना को खड़ी कर ऋषियों के साथ धर्मात्मा, राजा सगर प्रयत होकर परम अद्भूत भूगृह के अन्दर गये ॥ १६ ॥ वह भूगृह इन्द्रलोक के समान, रत्नों के दीप से प्रदीप्त, प्राणियों के संचार से रहित और सुन्दर भस्मराशि से पूर्ण था ॥ १७ ॥ राजा तथा वे ऋषि लोग देखकर क्रम से उस तेजःपुञ्ज के समीप गये। ज्वलन्त अग्नि के समान तेज से व्याप्त उनको देखकर ॥ १८ ॥

एवं विवदमानास्ते आगताः कुहरान्तिके ॥ १५ ॥ बलं तत्रैव संस्थाप्य ऋषिभिः सह धर्मवित् ॥
प्रयतः प्रययौ राजा भूगृहे परमाद्भुते ॥ १६ ॥ तदिन्द्रभुवनाकारं रत्नदीपैः सुदीपितम् ॥
भूतसञ्चाररहितं भस्मराशिप्रियावृतम् ॥१७॥ पश्यन् पश्यन् शनैर्यातास्तत्स्पर्शस्यान्तिकं द्विजाः ॥
तं दृष्ट्वा तेजसा व्याप्तं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥१८॥ प्रज्वलं परमात्मानं ध्यायन्तं योगगोचरम् ॥
कपिलेति चिराद्बुध्वा नत्वा स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥ १९ ॥ ते ऊचुः ॥ जय नित्य परानन्द जगद्यो-
निस्वरूपिणे ॥ मनसा सृष्टिसंहारकारिणे ते नमो नमः ॥ २० ॥ नमः सत्त्वगुणाविष्ट हरिरूपाय

जो कि प्रज्वलमान, परमात्मा, ध्यानमग्न और योगगम्य हैं उनको कुछ देर के बाद कपिल ऋषि जानकर नमस्कार किया और उनकी स्तुति करने लगे ॥ १९ ॥ वे लोग बोले कि हे नित्य! हे परानन्द! आपकी जय हो, जगत् के कारणस्वरूप तथा मन से सृष्टि संहार करने वाले आपको नमस्कार है॥ २० ॥ हे सत्त्वगुण धारी हरिस्वरूप!

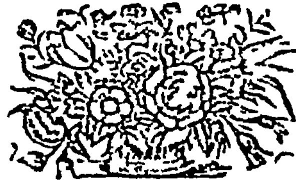
आपको नमस्कार है, हे रजोगुण धारी ! ब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है ॥२१॥ तथा तमः स्वरूप में स्थित शिवस्वरूप आपको नमस्कार है । हे अखिल लोक के वन्द्य (वन्दना के योग्य)! हे सुरासुर से पूजित चरणकमल ! आपको नमस्कार है नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे दयानिधे ! संसाररूपी समुद्र मे मग्न हमलोगों को रक्षा करें, हे भूसुरेन्द्र (विप्रों के स्वामी) ! शीघ्र हमलोगों का उद्धार करें । शोकरूपी विशाल तीर रहित अथाह जलराशि में पतित

ते नमः ॥ रजोगुणवते तुभ्यं ब्रह्मरूपाय ते नमः ॥ २१ ॥ तथा तमःस्वरूपाय शिवरूपाय ते नमः ॥ नमो नमस्तेऽखिललोकवन्द्य सुरासुरैरर्चितपादपद्म ॥२२॥ दयानिधे पाहि भवाब्धिमग्नान् क्षिप्रं समभ्युद्धर भूसुरेन्द्र ॥ शोकाम्बुराशौ पतितं विशालेऽगाधे तथा तीरविवर्जिते च ॥ २३ ॥ महीमिमामुद्धर दीनबन्धो यतस्त्वमेवादिवराहरूपी ॥ २४ ॥ स्तुत्वैवं सगरो राजा पुनः शोकसमावृतः ॥ पपाताचलवद्भूमौ वर्षाकाले महाचलात् ॥ कपिलोऽपि च तं ज्ञात्वा नयनोन्मील्य

इस पृथिवी का उद्धार करें, क्योंकि हे दीनबन्धो ! आप ही आदि वराहरूपधारी हैं । इस तरह स्तुति करके राजा सगर पुनः शोकमग्न हो गये और वर्षाकाल मे महान् पर्वत से पाषाण के समान पृथिवी पर गिर गये ॥ २३-२४ ॥ नेत्र को खोलने पर कपिल ऋषि अपने सामने निश्चित रूप से पतित राजा सगर को जानकर राजा तथा ऋषिगणों

निश्चितम् ॥ २५ ॥ नृपं ऋषिगणान् दृष्ट्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥२६॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमास-माहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

को देखकर यह वचन बोले ॥ २५--२६ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥



स्कन्द जी बोले कि हे विप्र लोग ! कपिल मुनि ने राजा सगर तथा ऋषिगणों से पूछा कि आपलोग कौन हैं ? और कहाँ से आये है ? तथा मेरे समीप किसलिये स्थित है ? । वे लोग बोले कि भगवन् ! यह परम धर्मात्मा राजा सगर शोक दुःख से व्याप्त होकर आपके सामने गिरा है । इस राजा सगर के दुःख का कारण सुनिये, हे भगवन् ! आप अखिल के ज्ञाता है ॥१-२॥ हे विभो ! बलवान् साठ हजार पुत्रों मे युक्त होकर राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ

स्कन्द उवाच ॥ के यूयं कुत आयाताः किमर्थं मम सन्निधौ ॥ ते ऊचुः ॥ भगवन् सगरो नाम नृपः परमधार्मिकः ॥ १ ॥ तवाग्रे पतितश्चायं शोकदुःखसमावृतः ॥ शृणुष्व कारणं तस्य ज्ञानमस्ति खिलं तव ॥ २ ॥ राज्ञा कृत्वा हयमखो महेन्द्रोऽपि जितो रणे ॥ पुत्रैः षष्टिसहस्रैश्च बलिभिः परिवारितः ॥ ३ ॥ ततश्च स्वमखारब्धे हयं पुत्रशतैर्वृतम् ॥ बहुभिः सैनिकैः सार्धं मुमोच जगतीतले ॥४ ॥ भ्रममाणे हयेऽकस्मादन्तर्धानं जगाम सः ॥ गते हयपतौ वीरा दृष्ट्वा त्रैलोक्यमाखिलम् ॥ ५ ॥ उर्वीतलं तदाख्यातं सकलं कुहरावधि ॥ ततस्ते विवरे लग्नं तत्र

आरम्भ किया और संग्राम मे इन्द्र को भी जीत लिया है ॥३॥ जब अश्वमेध यज्ञ आरम्भ हुआ और साठ हजार पुत्रों के तथा अनेक सैनिकों के साथ यज्ञाश्व जगतीतल पर छोड़ा गया ॥४॥ तब वह घोड़ा भ्रमण करता हुआ अकस्मात् अन्तर्हित हो गया, उस यज्ञाश्व के अन्तर्हित हो जाने पर उन वीरों ने बिलपयन्त त्रैलोक्य में खोज किया ॥ ५ ॥

और बिवरपर्यन्त समस्त पृथिवीतल के भागों को देखा । तदनन्तर वे सब सगरपुत्र विवर से संलग्न भूगृह में गये ॥६॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! इसके आगे का समाचार हमलोग नहीं जानते हैं । उन सगरपुत्रों के अन्वेपण (खोज) करने के लिये हमलोग आपके समीप आये हैं ॥ ७ ॥ समाधी के द्वारा सब समाचार जानकर कपिल ऋषि बोले कि हे ऋषि लोग ! इस कर्म को गुप्त रूप से इन्द्र ने किया है ॥ ८ ॥ और मेरे समीप बाँधकर स्वयं अपने लोक को चला गया । राजा

यातास्तु सर्वशः ॥ ६ ॥ अग्रिमं नैव जानीमो वृत्तान्तं ऋषिसत्तम ॥ तेषामन्वेषणार्थाय वयं याता-स्तवान्तिकम् ॥ ७ ॥ तज्ज्ञात्वा कपिलः प्राह ज्ञात्वा सर्वं समाधिना ॥ शक्रेणेदं कृतं कर्म गूढो-पायेङ्गितेन च ॥ ८ ॥ मदग्रे स्थापितश्चाश्वः शक्रः स्वभुवनं गतः ॥ राजानो राजमुख्याश्च समस्ता हयरक्षकाः ॥ ९ ॥ दस्युं मां मन्यमानाश्च पीडयामासुर्मां स्वयम् ॥ ततः क्रोधाग्निना दग्धा न मया बुद्धिपूर्वकम् ॥ १० ॥ एवमुक्त्वा ऋषिवरो क्रोशन्तं तं नराधिपम् ॥ उत्थापयित्वा स्वकरैः परिमार्ज्य मुखाम्बुजम् ॥ ११ ॥ उवाच मधुरं वाक्यं मा भैषी राजसत्तम ॥ गच्छ त्वं तु

लोग तथा राजमन्त्री और यज्ञाश्व के रक्षक लोग ॥ ९ ॥ मुझको चोर समझ कर स्वयं बाँधकर पीटने लगे । तदनन्तर क्रोधाग्नि से वे सब सगरपुत्रादि जल गये । मैंने उनको जानकर भस्म नहीं किया ॥ १० ॥ ऋषिश्रेष्ठ कपिल ने इस प्रकार कहकर विलाप करते नराधिप (सगर) को स्वयं उठाकर अपने हाथो से सगर के मुखकमल को पोंछा ॥११॥

और मधुर वचन बोले कि हे राजश्रेष्ठ ! भय न करो, तुम अपने राज्य को जाओ, तुम्हारा शतक्रतु (सौ यज्ञ) पूर्ण हो गया ॥ १२ ॥ मेरे अनुग्रह से तुमको अवश्य महेन्द्रपद मिलेगा । और इन्द्र ने जो दुष्टता की है उस दुष्टबुद्धि के कारण अहिल्या मे इन्द्र की कामुक बुद्धि होगी ॥ १३ ॥ तथा गौतम ऋषि से शाप मिलने पर भग (योनि) से चिह्नित होकर रहेगा । राजा सगर को वर तथा इन्द्र को शाप देकर ॥१४॥ पुनः राजा सगर से बोले कि हे राजन् !

निजं राज्यं पूर्णस्तव शतक्रतुः ॥ १२ ॥ भविष्यति महेन्द्रत्वं निश्चितं मदनुग्रहात् ॥ इन्द्रस्य दुष्टबुद्धित्वादहिल्यायां मतिर्भवेत् ॥ १३ ॥ गौतमाच्छापमाप्नोति भविष्यति भगाङ्कितः ॥ इति दत्वा वरस्तस्य शापं चापि शतक्रतोः ॥ १४ ॥ पुनरप्याह नृपतिं भूयात्ते तनयः प्रियः ॥ तव ज्येष्ठस्य पुत्रस्य सासत्या स्याद्वराङ्गना ॥ १५ ॥ तस्याः पुत्रो भवेन्नूनं शूरः सत्यपराक्रमः ॥ भगीरथेति विख्यातो सवितृकुलभूषणः ॥ १६ ॥ शस्त्रास्त्रविद्याकुशलो नीतिज्ञो सत्यवान् शुचिः ॥ जित्वा वसुमतीं पूर्णां दुष्करं तप आचरेत् ॥ १७ ॥ प्रभावात्तस्य तपसः आनयिष्यति जाह्न-

तुमको प्रिय पुत्र हो । तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र की सासत्या नाम की श्रेष्ठ स्त्री होगी ॥१५॥ उसमे शूर सत्यपराक्रमी पुत्र अवश्य होगा और वह भगीरथ नाम से विख्यात, सूर्यकुल का भूषण होगा ॥१६॥ तथा शस्त्र अस्त्र विद्या में कुशल, नीतिमान्, सत्यवान् और पवित्र आचरण का होगा । वह समस्त पृथिवी को जीतकर दुष्कर तप को करेगा ॥ १७ ॥ और तप के

प्रभाव से देवसरिता जाह्नवी (गङ्गा) को स्वर्ग लोक से पितरों के उद्धार के लिये ले आयेगा ॥ १८ ॥ उस गङ्गा के जलबिन्दु के स्पर्श से साठ हजार आपके पुत्र दिव्य देहधारी हो जायगे और तुम्हारे साथ विष्णु मन्दिर (वैकुण्ठ) लोक को जायंगे ॥१६॥ पृथिवी पर राजा भगीरथ से लाई जाने के कारण उस समय के बाद भागीरथी नाम से गङ्गा की प्रसिद्धि होगी ॥ २० ॥ महात्मा कपिल ऋषि के वचन को सुनकर ऋत्विजों के साथ कपिलजी का पूजन

वीम् ॥ स्वर्लोकाद्देवसरितं पितॄणां तारणाय च ॥१८॥ तस्याम्बुकणिकास्पर्शाद्दिव्यदेहा भवन्ति हि ॥ त्वया सह गमिष्यन्ति वैकुण्ठं विष्णुमन्दिरम् ॥ १९ ॥ यतो भगीरथेनाऽसौ आनीता वसुधातले ॥ भागीरथीति विख्यातिं तदादिपरमां दधौ ॥ २० ॥ इति श्रुत्वा गिरं तस्य कपिलस्य महात्मनः ॥ ऋत्विग्भिः सह तं पूज्य नमस्कृत्य ययौ पुरम् ॥ २१ ॥ ततः कष्टेन बहुना नीयमाने दिने सति ॥ अथैकस्मिन् सुदिवसे प्रासूत सुभगा सती ॥ २२ ॥ पुत्रं बहुगुणोपेतं जयन्तमिव चापरम् ॥ वसिष्ठेन समागम्य जातकर्मादिकं कृतम् ॥ २३ ॥ दत्त्वा दानानि बहुशो

तथा उनको नमस्कार कर राजा सगर अपने पुर (नगर) को गये ॥२१॥ तदनन्तर बडे कष्ट के साथ कुछ समय बीतने पर एक सुदिवस में सती सुभगा के पुत्र पैदा हुआ ॥२२॥ अनेक गुणों से युक्त दूसरे जयन्त (इन्द्रपुत्र) के समान उस पुत्र का वसिष्ठ ऋषि ने आकर जातकर्मादि संस्कार किया ॥ २३ ॥ जन्म के समय गोदान तथा अनेकों अन्य दान

देकर अन्य जनों को वस्त्र धन आदि देकर प्रसन्न किया ॥ २४ ॥ बारहवें दिन उस बालक का भगीरथ नाम रखा । वह बालक शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन बढने लगा ॥ २५ ॥ उपनयन समय आने पर पौत्र का विधिवत् उपनयन संस्कार किया । वह राजपुत्र समस्त विद्याओं का, हाथी घोडा रथादि का ॥ २६ ॥ तथा समस्त कलाओं

गोदानानि बहूनि च ॥ तथाऽन्येभ्यो जनेभ्यश्च वस्त्राणि च धनानि च ॥ २४ ॥ भगीरथेति तन्नाम चकार द्वादशेऽहनि ॥ दिने दिनेऽथ ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ २५ ॥ तथा चकार विधिवत् पौत्रोपनयनक्रियाम् ॥ अभ्यासः सर्वविद्यानां गजवाजिरथादिनाम् ॥ २६ ॥ कलानामपि सर्वासां कुशलोऽभून्नृपात्मजः ॥ एवं षोडशवर्षात् प्राक् जातः पूर्णोऽखिलेष्वपि ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा सर्वगुणैः पूर्णं राजधुर्यं महौजसम् ॥ मन्त्रिभिः सह संगम्य ददौ राज्यं सुजन्मने ॥ २८ ॥ ततः

का ज्ञाता हो गया, इस प्रकार सोलह (१६) वर्ष के पूर्व समस्त विषयों का पूर्ण ज्ञाता हो गया ॥ २७ ॥ उसको समस्त गुणो से पूर्ण, राज्यभार को सहन करने में समर्थ, महान् ओजस्वी जानकर तथा मन्त्रियों के साथ विचारकर उस सुजन्मा भगीरथ को राज्य दे दिया ॥ २८ ॥ तदनन्तर पितामह (दादा) का राज्य पाकर राजा भगीरथ समस्त पृथिवी-

मण्डल का पुत्रवत् पालन करने लगा ॥ २९ ॥ इसके बाद राजा सगर राज्यभार से निवृत्त होकर परम सुख के

पितामहं राज्यं लब्ध्वा स च भगीरथः ॥ पुत्रवत् पालयामास सकलं धरणीतलम् ॥ २९ ॥
ततः स सगरो राजा निवृंतिं परमाप सः ॥ ३० ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

भागी हुए ॥ ३० ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥



स्कन्द जी बोले कि हे विप्रलोग ! तदनन्तर राजा भगीरथ ने निष्कण्टक राज्य कर पूर्व पितरों के समाचार को सुनकर उदासीन हो गये ॥ १ ॥ और राज्य दण्ड कोशं (खजाना) को पितामह (राजा सगर) के अधीन तथा उनकी आज्ञा कों ग्रहण कर दारुण तप करने के निमित्त शीघ्र तपोवन को चले गये ॥ २ ॥ और तप के द्वारा श्री शिवजी को प्रसन्न करने के निमित्त निराहार रहकर स्थिरचित्त से पञ्चाक्षरी विद्या का जप करने लगे ॥ ३ ॥

स्कन्द उवाच ॥ ततो भगीरथो राजा कृत्वा राज्यमकण्टकम् ॥ वृत्तं शृण्वन् स पितॄणां उदासीनो बभूव ह ॥१॥ राज्यं दण्डं च कोशं च स्थापयित्वा पितामहे ॥ गृहीत्वाऽऽज्ञां ययौ शीघ्रं तपस्तप्तुं सुदारुणम् ॥ २ ॥ शिवमुद्दिश्य तपसा निराहारेण तिष्ठता ॥ विद्यां पञ्चाक्षरीं नाम जपतः स्थिरचेतसा ॥ ३ ॥ तिष्ठता चैकपादेन दशवर्षाण्यहर्निशम् ॥ तोयाहारवता तद्वद्वाय्वाहारवता तदा ॥ ४ ॥ एवं कृत्वा तपस्तेन नीतः कालो यदा महान् ॥ तदैव स्वयमायातो स शिवो भक्तवत्सलः ॥ ५ ॥ वरं दातुं समायातस्तस्य भक्तिवशीकृतः ॥ शिवं दृष्ट्वा प्रणम्यो-

तथा दश वर्ष पर्यन्त दिन रात एक पैर से स्थित होकर और जलमात्र आहार कर तथा वायु पीकर तप करने लगे ॥४॥ इस प्रकार तप करते जब राजा भगीरथ को बहुत समय बीत गया तब भक्तवत्सल श्री शिवजी स्वयं वहाँ पर आये ॥ ५ ॥ भगीरथ की भक्ति के वशीभूत होकर जब वर देने के निमित्त शिवजी वहाँपर आये तब राजा भगीरथ ने

शिवजी को देखकर प्रणाम किया और उच्च स्वर से मधुर वचन बोले ॥ ६ ॥ भगीरथ ने कहा कि हे शिव ! हे शम्भो ! आपको नमस्कार है, हे सबको सुख देने वाले ! हे जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है, हे विश्व के सर्जनहार! ॥ ७ ॥ रजोगुण स्वरूप आपको नमस्कार है, हे पालनहार! सत्त्वगुण स्वरूप आपको नमस्कार है, हे संहार करनेवाले! तामस रूप आपको नमस्कार है ॥ ८ ॥ कर्मों के फलदाता, भुक्ति (भोगपदार्थ) और मुक्ति के दाता, मन वचन

च्चैर्मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥ भगीरथ उवाच ॥ शिव शम्भो नमस्तुभ्यं सर्वेषां सुखदायक ॥
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ विश्वकर्त्रे नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥ रजोयुक्तस्वरूपाय पालकाय नमो नमः ॥
सत्त्वात्मने च संहर्त्रे तामसाय नमो नमः ॥ ८ ॥ कर्मणां फलदात्रे च भुक्तिमुक्तिप्रदाय च ॥
मनोवाग्गतिरूपाय ब्रह्मीभूताय ते नमः ॥ ९ ॥ अन्तर्वायुं निरुन्धानो योगिनो ध्यानशालिनः ॥
निरीहं शम्भुमीक्षन्ते तन्नमामि सदाशिवम् ॥ १० ॥ स्कन्द उवाच ॥ श्रुत्वैवं वरयामास

कर्म स्वरूप ! ब्रह्मीभूत आपको नमस्कार है ॥ ९ ॥ भीतर वायु को रोक कर ध्यानशाली योगी लोग जिस निरीह शम्भु को देखते हैं उन सदाशिव को नमस्कार है ॥ १० ॥ स्कन्द जी बोले कि हे विप्रलोग ! इस प्रकार राजा भगीरथ की स्तुति से प्रसन्न होकर शिवजी बोले कि हे नृप ! तुमसे हम प्रसन्न है, वर माँगो । श्री शिवजी के वचन को

सुनकर राजा भगीरथ बोले कि हे शिव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझको आप मे दृढ़ भक्ति दीजिये ॥ ११ ॥ और पितरों की विशुद्धि के निमित्त सिद्धिदा श्री गङ्गा को ले आइये । श्री शिवजी बोले कि हे राजन् ! वह गङ्गा स्वर्ग मे वास करती है, हम उस गङ्गा को लाने मे समर्थ नहीं है ॥ १२ ॥ त्रैलोक्य से वन्दित जो देवेश हैं उन विष्णु भगवान् को प्रसन्न करो । जिस उपाय के करने से विष्णु भगवान् शीघ्र तुम्हारे समीप आ जायँगे ॥ १३ ॥ हम उस

प्रसन्नोऽहं पुनर्नृप ॥ नृप उवाच ॥ तुष्टश्चेत् शिव मह्यं त्वं भक्तिं देहि दृढां तव ॥ ११ ॥
पितॄणां च विशुद्ध्यर्थं गङ्गामानय सिद्धिदाम् ॥ शिव उवाच ॥ स्वर्गे तिष्ठति सा गङ्गा नाहमानयितुं क्षमः ॥ १२ ॥ प्रसन्नं कुरु देवेशं विष्णुं त्रैलोक्यवन्दितम् ॥ येनोपायेन ते क्षिप्रं विष्णुः सान्निध्यमिच्छति ॥ १३ ॥ तदहं ते प्रवक्ष्यामि व्रतं परमगोपनम् ॥ पुरा रविसुतो विष्णुं स्तुत्वा नत्वा प्रसादितम् ॥ १४ ॥ कृत्वा प्रसन्नं तद्गोप्यं क्रीयतामिति चाब्रवीत् ॥ तथेत्युक्त्वा भगवता गोपितं बहु वासरम् ॥ १५ ॥ तदद्य ते प्रवक्ष्यामि तत्कुरुष्व

परम गुप्त व्रत को तुमसे कहेंगे । हे राजन् ! प्रथम सूर्यपुत्र ने विष्णु भगवान् की स्तुति की, और नमस्कार कर प्रसन्न किया ॥ १४ ॥ प्रसन्न होकर विष्णु भगवान् ने उस गोप्य व्रत को करने के लिये कहा और उसकी विधि वगैरह भी कही । बाद उस व्रत को बहुत दिन तक विष्णु ने गुप्त रखा ॥ १५ ॥ इस समय हम तुमसे उस व्रत को कहेंगे,

विधिपूर्वक उस व्रत को तुम करो। ज्येष्ठमास में प्रात:काल उठकर विधिपूर्वक स्नान करो ॥ १६ ॥ तथा त्रिविक्रम (वामन) भगवान् का पूजन कर पञ्चाग्नि का सेवन, ब्राह्मणों को दही चावल का दान और श्रेष्ठ जल दान करो ॥ १७ ॥ इस तरह एक मास व्रत करने से विष्णु भगवान् प्रसन्न होंगे और समस्त पापों को नष्ट करनेवाली उस स्वर्गङ्गा को ले आयेंगे ॥ १८ ॥ श्री शिवजी के वचन को सुनकर राजा भगीरथ ने शिवप्रोक्त व्रत को किया, उस

विधानतः ॥ ज्येष्ठे मासि समुत्थाय स्नात्वा प्रातर्यथाविधि ॥ १६ ॥ त्रिविक्रमं समभ्यर्च्य पञ्चाग्नेश्चापि साधनम् ॥ दधिभक्तं ब्राह्मणेभ्यो जलदानं तथा परम् ॥ १७ ॥ कुरुष्व वै मासमात्रं ततः प्रीतो भवेद्धरिः ॥ आनयिष्यति तां गङ्गां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १८ ॥ शिवस्य वचनं श्रुत्वा तच्चकार भगीरथः ॥ तस्यानुष्ठानमात्रेण विष्णुः सान्निध्यतां गतः ॥ १९ ॥ स्तुत्वा नत्वा हरिं याचे गङ्गां परमपावनीम् ॥ हरिरुवाच ॥ याहि भद्र मया सार्धं मन्दाकिन्यास्तटे शुभे ॥ २० ॥ कुरु तत्र जपं होमं स्नानं च द्विजतर्पणम् ॥ व्रतं चानशनं तत्र भक्तियुक्तेन

व्रत के अनुष्ठान मात्र से विष्णु भगवान् समीप आ गये ॥ १९ ॥ उन विष्णु भगवान् की स्तुति तथा नमस्कार कर उनसे परम पावनी गङ्गा की याचना की। विष्णु भगवान् बोले कि हे भद्र भगीरथ! उस मन्दाकिनी के पवित्र तट पर मेरे साथ तुम चलो ॥ २० ॥ वहाँ चलकर जप, हवन, स्नान, द्विज तर्पण (ब्राह्मण भोजन), और भक्तियुक्त चित्त से

अनशन व्रत को करो ॥ २१ ॥ इस प्रकार एक वर्ष इस व्रत को करो, बाद वह गङ्गा तुम्हारे साथ जायगी । विष्णु भगवान् के वचन को सत्य मानकर विष्णु के साथ मन्दाकिनी के तट को राजा भगीरथ गये ॥ २२ ॥ और मन्दाकिनी के सुन्दर तट भाग में स्थित होकर उस विष्णुप्रोक्त व्रत का परम भक्ति के साथ अनुष्ठान किया । तब सरिद्वरा गङ्गा प्रसन्न हो गईं ॥ २३ ॥ और राजा भगीरथ के सामने चारुनेत्रा (शोभन नेत्रा) स्त्रीरूप होकर प्रकट हो गईं ।

चेतसा ॥ २१ ॥ संवत्सरं कुरुष्वैतत् पश्चाद्यास्यति त्वत्सह ॥ विष्णोश्च वचनं तथ्यं मत्वा साकं जगाम सः ॥ २२ ॥ मन्दाकिन्यास्तटे रम्ये स्थित्वाऽद्धं तदनुष्ठितम् ॥ चकार परया भक्त्या तदा तुष्टा सरिद्वरा ॥ २३ ॥ आविर्भूताऽथ तस्याग्रे स्त्रीरूपा चारुलोचना ॥ ज्ञात्वा तं त्रिपथां गङ्गां तुष्टुवे भक्तिपूर्वकम् ॥ २४ ॥ मन्दाकिनी ततस्तुष्टा वरं ब्रूहीति चाब्रवीत् ॥ एहि भद्रे मया साकं भूतले पितृमुक्तये ॥ २५ ॥ तथेत्युक्त्वा ययौ तेन साकं सा वसुधातले ॥ प्रति-

ये त्रिपथा गङ्गा है, यह जानकर भक्तिपूर्वक उनकी भगीरथ ने स्तुति की ॥ २४ ॥ तदनन्तर मन्दाकिनी प्रसन्न होकर बोलीं कि हे राजन् ! तुम मुझसे वर माँगो । इस प्रकार गङ्गा के कहने पर राजा भगीरथ बोले कि हे भद्रे ! मेरे साथ पृथिवी पर पितरों की मुक्ति के लिये चलिये ॥ २५ ॥ भगीरथ को तथास्तु (चलेंगे) कह कर वह गङ्गा भगीरथ के

साथ पृथिवीतल को गईं। प्रतिपत् के दिन प्रकट होकर दशमी के दिन ओघ (प्रवाह) रूप हो गईं ॥ २६ ॥ और लोकों को पवित्र करने के निमित्त पृथिवी पर अवतीर्ण हुईं। इसलिये पवित्र वह दशमी दशहरा नाम से प्रसिद्ध हुई ॥ २७ ॥ हे द्विज! तदनन्तर भगीरथ ने उस गङ्गा के दिव्य जल से पितरों को प्लावित किया। गङ्गाजल से

पन्निर्गता सापि दशम्यामोघरूपिणी ॥ २६ ॥ अवतीर्णा वसुमती लोकानां पावनाय च ॥ अतः सा दशमी पुण्या ख्याता दशहरेति च ॥ २७ ॥ ततस्तस्या जलैर्दिव्यैः पितरः प्लाविता द्विज ॥ दिव्यदेहधराः सर्वे गतास्ते विष्णुमन्दिरम् ॥ २८ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

प्लावित वे सब भस्म राशि सगर के पुत्र दिव्य देह होकर विष्णु भगवान् के मन्दिर (वैकुण्ठ) को गये ॥ २८ ॥

इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥



स्कन्द जी ऋषियों से बोले और वेदव्यास जी राजा युधिष्ठिर से बोले कि हे नृपश्रेष्ठ! ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष में एकादशी का व्रत होता है, उस दिन मनुष्य निर्जल उपवास कर शर्करा (चीनी) सहित जल से पूर्ण घट का ॥ १ ॥ दान श्रेष्ठ ब्राह्मणों को देकर विष्णुलोक में जाकर आनन्द करता है। युधिष्ठिर वेदव्यास जी से बोले कि हे द्वैपायन! मैंने मानव धर्म (स्मृति धर्म) और वैदिक धर्मों को सुना है ॥२॥ हे व्यास जी! अब आप वैष्णव-धर्मों को कहिये।

स्कन्द उवाच ॥ ज्येष्ठे मासे नृपश्रेष्ठ शुक्ले चैकादशी भवेत् ॥ निर्जलं समुपोष्यात्र जल-कुम्भान् सशर्करान् ॥ १ ॥ प्रदाय विप्रमुख्येभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ श्रुता मे मानवा धर्मा वैदिकाश्च मया श्रुताः ॥ २ ॥ द्वैपायन त्वं धर्मांश्च वैष्णवान् वक्तुमर्हसि॥ व्यास उवाच ॥ श्रुतास्ते मानवा धर्मा वैदिकाश्च तथा श्रुताः ॥ ३ ॥ कलौ युगे न शक्यन्ते ते वै कर्तुं नराधिप ॥ सुखोपायमल्पधनमल्पक्लेशं महाफलम् ॥४॥ पुराणानां च सर्वेषां सारभूतान्

वेदव्यास जी बोले कि हे राजन्! आपने मानव धर्म और वैदिक धर्मों को सुना है ॥ ३ ॥ हे नराधिप! वे सब मानव तथा वैदिक धर्म कलियुग में अशक्य (शक्ति से असाध्य) है। इसलिये सुख से करने योग्य, थोड़ा खर्च, अल्प क्लेश, महान् फलदायक ॥ ४ ॥ और समस्त पुराणों का सारभूत जो उपाय है उसको हम तुमसे कहते हैं।

हे राजन् ! दोनों पक्ष की एकादशी के दिन भोजन नहीं करना ॥५॥ जो प्राणी एकादशी के दिन भोजन नहीं करता, वह नरक को नहीं जाता । व्यासजी के वचन को सुनकर कम्पित (कम्पायमान) भीमसेन बोले ॥ ६ ॥ महाबाहु भीमसेन भयभीत होकर वचन बोले कि हे पितामह ! मैं अशक्त (असमर्थ) हूँ, इस उपवास के विषय में मैं क्या करूँ ? ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! महान् फलदायक एक व्रत को मुझसे आप कहिये । व्यासजी बोले कि हे भीमसेन ! वृष या

वदामि ते ॥ एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥ ५ ॥ एकादश्यां न यो भुंक्ते न याति नरकं तु सः ॥ व्यासस्य वचनं श्रुत्वा कम्पितश्चायमब्रवीत् ॥ ६ ॥ भीमसेनो महाबाहुर्भीतो वाक्यमभाषत ॥ पितामह अशक्तोऽहं उपवासे करोमि किम् ॥ ७ ॥ ततो बहुफलं ब्रूहि व्रतमेक-मपि प्रभो ॥ व्यास उवाच ॥ वृषस्थे मिथुनस्थे वा शुक्ला ह्येकादशी भवेत् ॥ ८ ॥ ज्येष्ठे मासि प्रयत्नेन सोपोष्या जलवर्जिता ॥ स्नानमाचमनं चैव वर्जयित्वोदकं बुधः ॥ ९ ॥ उपभुञ्जीत नैवान्यद् व्रतभङ्गोऽन्यथा भवेत् ॥ उदयादुदयं यावद्वर्जयित्वा जलं बुधः ॥ १० ॥ अप्रयत्नादवा-

मिथुन के सूर्य होने पर ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष मे जो एकादशी होती है ॥८॥ उस दिन प्रयत्नपूर्वक जलरहित उपवास व्रत करना चाहिये, स्नान और आचमन के जल को छोडकर विद्वान् ॥ ९ ॥ अन्य जल का ग्रहण न करे । अन्यथा (स्नान आचमन जल के अलावा) जल का ग्रहण करने से व्रत भङ्ग हो जाता है । विद्वान् सूर्योदय से सूर्योदय तक

प्नोति द्वादशीफलमुत्तमम् ॥ ततः प्रभाते विमले द्वादश्यां स्नानमाचरेत् ॥ ११ ॥ जलं सुवर्णं दद्याच्च द्विजातिभ्यो यथाविधि ॥ भुञ्जीत कृतकृत्यस्तु ब्राह्मणैः सहितो वशी ॥ १२ ॥ एवं कृते तु यत्पुण्यं तन्मे प्राह जनार्दनः ॥ एकादश्याः सिते पक्षे ज्येष्ठस्योदकवर्जितम् ॥ १३ ॥ उपोष्य फलमाप्नोति तच्छृणुष्व वृकोदर ॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ १४ ॥ सर्वहोमेषु यत्पुण्यं तदस्मात् समुपोषणात् ॥ संवत्सरे च याश्च स्युः शुक्ला कृष्णा वृकोदर ॥ १५ ॥

जल का त्याग कर दे ॥ १० ॥ तो विना प्रयास के एकादशी व्रत का श्रेष्ठ फल उसको मिलता है । वाद द्वादशी के दिन प्रातःकाल स्नान करे ॥ ११ ॥ और ब्राह्मणों को विधिपूर्वक जल और सुवर्ण का दान करके देवे । इस तरह वह जितेन्द्रिय कृतकृत्य होकर ब्राह्मणों के साथ भोजन करे ॥ १२ ॥ इस प्रकार व्रत करने से जो पुण्य होता है उसे मुझसे जनार्दन भगवान् ने कहा है। ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष की एकादशी के दिन जलरहित (निर्जल) ॥१३॥ उपवास का जो फल होता है, हे वृकोदर (भीमसेन)! उसको तुम सुनो । समस्त दान देने से जो पुण्य, समस्त तीर्थों मे स्नानादि करने से जो पुण्य ॥ १४ ॥ समस्त हवन कर्म करने से जो पुण्य होता है वह पुण्य ज्येष्ठ शुक्ल की एकादशी के दिन उपवास करने से होजाता है । हे वृकोदर ! वर्ष के अन्दर शुक्ल अथवा कृष्णपक्ष की जितनी एकादशी होती हैं ॥१५॥

वे सब उपवास करने के योग्य है इसमे संशय नहीं है । वे सब एकादशी धन धान्य पुण्य पुत्र और आरोग्य को देने वाली है ॥ १६ ॥ हे नरव्याघ्र ! उन दिनों में उपवास करने से उक्त फल को देती हैं, यह हम तुमसे सत्य कहते हैं । और हे नरव्याघ्र ! एकादशी के दिन उपवास व्रत करने से उस प्राणी के सम्मुख मरणकाल में यमदूत नहीं आते हैं जो कि यमदूत भयानक विशाल काय कृष्णवर्ण दण्ड पाश से युक्त रौद्र (क्रूर) कहे जाते है ॥१७-१८॥ एकादशी के दिन

स्ताश्च सर्वाः स्युरेकादश्यो न संशयः ॥ धनधान्यप्रदाः पुण्याः पुत्रारोग्यप्रदास्तथा ॥ १६ ॥
उपोषिता नरव्याघ्र इति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ यमदूता महाकायाः करालाः कृष्णरूपिणः ॥ १७ ॥
दण्डपाशधरा रौद्रा मरणे दृष्टिगोचराः ॥ न भवन्ति नरव्याघ्र एकादश्यामुपोषणात् ॥ १८ ॥
पीताम्बरधराः सौम्याश्चक्रहस्ता मनोजवाः ॥ अन्तकाले नयन्त्येनं वैष्णवं वैष्णवीं पुरीम् ॥१६॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन उपोष्या जलवर्जिता ॥ जलधेनुं तथा दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २० ॥

व्रतकर्ता जो वैष्णव है उसको अन्त समय में वैष्णवपुरी (वैकुण्ठ) को ले जाने के निमित्त पीताम्बरधारी सौम्यस्वभाव चक्रधारी और मन के समान वेगशाली विष्णुदूत वहाँ आते है और उसे वैकुण्ठ ले जाते है ॥१६॥ इसलिये सर्वोपाय से एकादशी का जलरहित व्रत कर और जलधेनु दान देकर प्राणी सब पापों से मुक्त हो जाता है॥२०॥ हे नृपश्रेष्ठ !

ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ या शुक्लैकादशी भवेत् ॥ निर्जलं समुपोष्यान्नं जलकुम्भान् सशर्करान्
॥ २१ ॥ प्रदाय विप्रमुख्येभ्यस्तापत्रयविवर्जितः ॥ विष्णुलोकमवाप्नोति मोदते विष्णुसन्निधौ
॥ २२ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमाससमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष की जो एकादशी होती है उस दिन निर्जल उपवास कर अन्न और शर्करा सहित जलपूर्ण घट का ॥ २१ ॥ दान श्रेष्ठ ब्राह्मण को देकर प्राणी तीनों ताप से छूट जाता है और विष्णुलोक में जाकर विष्णु भगवान् के समीप रह कर आनन्द करता है ॥ २२ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमाससमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥



भीमसेन व्यासजी से बोले कि हे तात ! जो आपने एकादशी का व्रत और उसका अद्भुत माहात्म्य कहा है, वह मूढ चित्त होने के कारण मुझको सत्य प्रतीत नहीं होता है ॥ १ ॥ इसलिये वात्सल्य भावना का त्याग कर सत्य वचन कहिये । हे तात ! यदि आप सत्य वचन न कहेंगे तो मैं विदुर वचन (धृतराष्ट्र के प्रति जो विदुर के प्रोक्त वचन) है उनके समान नष्ट हो जाऊँगा ॥२॥ हे तात! मन्त्री पुरोहित और वैद्य ये तीन जिसके साथ प्रिय वचन बोलते

भीमसेन उवाच ॥ यत्त्वया कथितं तात माहात्म्यमपि चाद्भुतम् ॥ प्रतिभाति न मे सत्यं सततं मूढचेतसः ॥ १ ॥ तस्मात् कथय मे सत्यं त्यक्त्वा वात्सल्यभावनाम् ॥ नो चेन्नाशं गमिष्यामि विदुरस्य वचो यथा ॥ २ ॥ मन्त्री पुरोहितो वैद्यस्त्रयो यस्य प्रियंवदाः ॥ तस्य त्रीणि विनश्यन्ति कोशो धर्मः कलेवरम् ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ कथितं यन्मया पूर्वं तव वत्स समासतः ॥ नानृतं तद्विजानीहि सर्वथा पवनात्मज ॥ ४ ॥ अत्र ते कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ विशाखश्रवणादेव संशयस्ते गमिष्यति ॥ ५ ॥ पुरा कालाञ्जनगिरौ पुलिन्दो नाम

हैं उसके कोश (धननिधि), धर्म और शरीर इन तीनों का नाश हो जाता है ॥३॥ व्यास जी बोले कि हे भीमसेन ! हे वत्स ! हमने पहिले जो संक्षेप में आपसे कहा है, हे पवनपुत्र ! वह सर्वथा सत्य है उसको मिथ्या नहीं मानना ॥४॥ मैं इस विषय में पुरातन इतिहास को कहूँगा, तुम्हारा संशय विशाख (स्कन्द जी) के वचन श्रवण से दूर हो जायगा

॥५॥ पूर्वकाल में कालाञ्जन पर्वत पर पुलिन्द नाम से विख्यात समस्त धर्म का ज्ञाता राजा हुआ। उसने निष्कण्टक राज्य करके ॥ ६ ॥ वहाँ द्वारिका के समान महान् पुर बनाया। और स्वयं अनेकों रथ, पत्ती (सेना) ऐरावत समान हाथी ॥ ७ ॥ उच्चैःश्रवा समान अनेकों घोड़ा से परिवारित (आवृत) होकर और सचिवों मे अनुमोदित वह राजा

विश्रुतः ॥ राजा सकलधर्मज्ञो कृत्वा राज्यमकण्टकम् ॥ ६ ॥ द्वारावतीसमं तत्र कल्पयित्वा पुरं महत् ॥ अनेकरथपत्तीको गजैरैरावतोपमैः ॥ ७ ॥ उच्चैःश्रवःसमैरश्वैर्बहुभिः परिवारितः ॥ निर्गतो जययात्रायै सचिवैरनुमोदितः ॥ ८ ॥ शतयोजनविस्तीर्णा वाहिनी प्रययौ पुरात् ॥ तीर्थपश्चात्तथाभूता छादयन्ति रसातलम् ॥ ९ ॥ सप्तव्यूहा ययौ सेना यथा सप्त महाब्धयः ॥ जिता माण्डलिका वीरा राजानो राजसेवकाः ॥१०॥ तेभ्यो गृहीत्वा विपुलं करभारं पुरं ययौ ॥

विजययात्रा के लिये निकला ॥८॥ सौ योजन मे विस्तृत राजा की सेना पुर (नगर) से निकली, और राजा के साथ चलने वाली वह सेनाङ्ग जो पदाति (पैदल सेना) है वह पृथिवी को आच्छादित कर जा रही थी॥९॥ और सात व्यूह (रचना विशेष) से युक्त वह सेना सात महा समुद्र के समान मालूम होती थी। राजा पुलिन्द ने बड़े २ माण्डलिक, वीर, राजा और राजसेवकों को जीत लिया ॥ १० ॥ और उनसे विपुल (बहुत) कर भार लेकर पुर को गया। उसी

तरह भूलोक के चक्रवर्ती राजाओ को जीत कर ॥ ११ ॥ जिस जिस सेनापति को बलवान् सुनता था, मद से गर्वित वह राजा पुलिन्द वहाँ वेगपूर्वक जाकर उनको जीतता था ॥ १२ ॥ इस तरह पर्यटन करते राजा पुलिन्द से चारों (गुप्तचरों) ने आकर कहा कि हे राजन् ! सभों का मालिक परम धर्मात्मा एक राजा है ॥१३ ॥ जो कि श्रुति स्मृति पुराण का वेत्ता, देवता अतिथि का पूजक, शूर और सत्यप्रतिज्ञ है,उसको किसी ने भी नहीं जीता है, ॥१४॥ उसको

तथैव जित्वा भूलोके राजानश्चक्रवर्तिनः ॥११॥ यं यं सेनापतिं वीरं शृणोति स्म बलीयसम् ॥
तं तं जित्वा रयाद्गत्वा पुलिन्दो मदगर्वितः ॥ १२ ॥ एवं पर्यटतस्तस्य चारैर्वृत्तं निवेदितम् ॥
अस्त्येकः सकलाधीशो राजा परमधार्मिकः ॥ १३ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञो देवतातिथिपूजकः ॥
शूरः सत्यप्रतिज्ञश्च नैव केनापि निर्जितः ॥१४॥ तं तं निर्जित्य भूलोके न ते कीर्तिः सुतोषिणी ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा पुलिन्दो मन्त्रिभिः सह ॥ १५ ॥ वाहिनीसहितं पूर्णं ययौ प्राचीनवर्हिषम् ॥
नगरं वेष्ट्य परितो स्थिताः स्म सैनिकाः भृशम् ॥१६॥ यथा वृकगणैरेकः सिंहो बद्धो वनान्तरे ॥

विना जीते इस भूमण्डल मे आपकी कीर्ति सुतोषिणी (सन्तुष्ट करने वाली) न होवेगी। गुप्तचरों के यह वचन सुनकर अपने मन्त्रियों के साथ उस राजा पुलिन्द ने ॥ १५ ॥ सेना सहित प्राचीन वर्हीं के सम्पूर्ण नगर को जाकर चारों तरफ से अच्छी तरह घेर लिया और पुलिन्द के सैनिक उस नगर के चारो तरफ स्थित हो गये ॥ १६ ॥ जैसे वन में

वृकों (सियारों) के भुण्ड से एक सिंह घेर लिया जाय, इस तरह उसे चारो तरफ से घेर लिया । हे तपोधन ! उस समय उस नगर मे बड़ा कोलाहल मचा ॥ १ ॥ कुछ लोगों ने राजा से, कुछ लोगो ने मन्त्रियों से जाकर समाचार कहा ।-हे राजन् ! उस दिन ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष की एकादशी तिथि थी ॥ १८ ॥ उस नगर के वासी सभी लोग स्नान कर प्रसन्नता के साथ विष्णु पूजा मे रत हो गये और विष्णु भगवान् मे लीन होने के कारण परस्पर बात चीत

ततः कोलाहलो जातो पुरमध्ये तपोधनाः ॥१७॥ राजानं केचिदाचख्युः मन्त्रिणश्चापरे तदा ॥ ज्येष्ठस्यैकादशी शुक्ला आसीत्तस्मिन् दिने नृप ॥ १८ ॥ सर्वे स्नाताः समुदिताः विष्णुपूजारताश्च ते ॥ परस्परं न चोचुस्ते सर्वे तद्गतमानसाः ॥१९॥ पुलिन्दसैनिकाः सर्वे तदा ग्रामं विवेशतुः ॥ विलुण्ठनपराः सर्वे कोऽपि तान्न न्यवरायत् ॥२०॥ पुलिन्दं तं नमस्कृत्य केनापि ग्रामवासिना ॥ सामोपायमुवाचेदं संयोज्य करसम्पुटम् ॥ २१ ॥ अद्यैवास्ति नृपश्रेष्ठ पुण्यं चैकादशीव्रतम् ॥

भी नहीं करते थे ॥ १९ ॥ उस समय राजा पुलिन्द के सैनिक ग्राम मे घुस गये और लूटने में लग गये, उन लूटेरों को किसीने मना न किया ॥ २० ॥ इसी बीच मे किसी ग्रामवासी ने राजा पुलिन्द को नमस्कार कर हाथ जोड़कर साम (शान्ति) उपाय से यह वचन कहा कि ॥ २१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आज पुण्यप्रद एकादशी का व्रत है, हे राजन्!

समस्त नागरिकों के साथ राजा उपासना मे स्थित है ॥ २२ ॥ और आज नागरिक लोग तथा राजा भोजन, भाषण, हिंसा, मिथ्या वचन, दोषकर्म न करेंगे ॥ २३ ॥ इसलिये हे राजन् ! आज और कल्ह के लिये दया कीजिये और मैं राजा की आज्ञा से नहीं आया हूँ, परन्तु मैं आपसे यहाँ की निश्चित जो बात है उसको कहता हूँ ॥ २४ ॥

उपास्यते नागरिकैराज्ञया नृपतेऽखिलैः ॥ २२ ॥ नाद्याहारो न वाऽऽलापो न हिंसा नानृतं तथा ॥
नैव दोषकृतं कर्म क्रियते प्रभुणा सह ॥ २३ ॥ तस्मात् क्षमस्व नृपते अद्य श्वो वा दयां कुरु ॥
नाहं नृपाज्ञया यातो वदामि तव निश्चितम् ॥ २४ ॥ दिनद्वयं त्वया यद्यक्रियते तत्क्षमिष्यति ॥
तन्न जानामि नृपते परश्वः किं भविष्यति ॥ २५ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमाससमाहात्म्ये अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

हे नृपते ! दो दिन तक आप जो कुछ करेंगे राजा वह सब सहन करेंगे, परन्तु परसों क्या होगा ? यह मै नहीं जानता ॥२५॥ इति श्रीभविष्यपुराणे ज्येष्ठमाससमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसाद-व्यासेन कृतायां भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

व्यासजी बोले कि हे भीमसेन ! उस ग्रामवासी के इन वचनों को सुनकर क्रुद्ध वह राजा पुलिन्द गर्वयुक्त होकर वचन बोला ॥ १ ॥ ए ग्रामवासी ! यह एकादशी कौन है ? इस दिन कौन व्रत किया जाता है ? हे मूढ़ ! तू निष्फल बात को क्यों कहता है । तू अपने घर सकुशल चला जा ॥ २ ॥ नहीं तो ये परम दारुण दूत तुझको पीटेंगे । तदनन्तर

व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा पुलिन्दो ग्रामवासिनः ॥ उवाच रुट्परीतात्मा गर्वयुक्तेन चेतसा ॥ १ ॥ केयं एकादशी नाम क्रियते तत्र किं व्रतम् ॥ मोघं जल्पसि किं मूढ शिवं गच्छ निजालयम् ॥ २ ॥ नो चेत्त्वां पीडयिष्यन्ति दूताः परमदारुणाः ॥ ततस्ते सैनिकाः सर्वे प्रविष्टा नगरान्तरे ॥ ३ ॥ भंक्त्वा गृहकपाटानि वणिजानां महात्मनाम् ॥ निन्युः समस्तसदनाद्वसुजातं शनैः शनैः ॥ ४ ॥ तथैव धनिकानां च गृहान्नीतं महाधनम् ॥ एवं प्रतिगृहं व्याप्तं घोरैश्चमुचरैस्तथा ॥ ५ ॥ कन्दमूलफलं तोयं न लब्धं पुरवासिभिः ॥ एवं चोपोषणं

वे सब सैनिक नगर में घुस गये ॥ ३ ॥ और बड़े २ महात्मा महाजनों के गृह के किवाड़ फाटक वगैरह तोड़कर सभी गृहों से धनकोश धीरे धीरे ले गये ॥ ४ ॥ उसी तरह धनिकों के गृह से श्रेष्ठ धनों को ले गये । इस तरह समस्त नगर के गृह भयानक सैनिकों से भर गया ॥ ५ ॥ उस दिन पुरवासियों को कन्द मूल फल वगैरह कुछ भी न मिला

और समस्त पुरवासियों का जल रहित (निर्जल) एकादशी का व्रत हो गया ॥ ६ ॥ सूर्यनारायण अस्त हो गये और नगर के बालकों को जल तक नहीं मिला । इस तरह उस एक ही नगर में बड़ा हाहाकार होने लगा ॥ ७ ॥ स्वर्ग में भगवान् विष्णु यह देखकर चकित हो गये, और फणीन्द्र (शेष) पर स्थित विष्णु भगवान् उस समय संभ्रान्त के समान उठकर खड़े हो गये ॥ ८ ॥ तथा गरुड़जी को बुलाकर उनके कान में सभी बातें कह दीं

जातं प्राणिनां जलवर्जितम् ॥ ६ ॥ गतेऽपि चण्डकिरणे बालेऽपि पयवर्जितम् ॥ हाहाकारः समभवदेकैव नगरान्तरे ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा स भगवान् विष्णुः स्वर्लोके चकितोऽभवत् ॥ सम्भ्रान्त इव चोत्तस्थौ फणीन्द्रे फणिसंस्थितः ॥ ८ ॥ आहूय गरुडं कर्णे शशंस सकलं तदा ॥ आरुह्य तु ययौ तूर्णं निर्ममे विविधां चमूम् ॥ ९ ॥ त्रिनेत्रां सप्तहस्तां च चतुष्पादां महाद्भुताम् ॥ दन्तुरां त्रिशिरस्कां वै द्विवक्त्रां दशवक्त्रकाम् ॥१०॥ षड्वक्त्रान् पञ्चवक्त्रांश्च गजवक्त्रान् गजा-

और गरुड़जी की सवारी कर शीघ्र उस नगर को गये तथा वहाँ जाकर विविध प्रकार की सेना का निर्माण किया ॥ ९ ॥ जिस सेना के सैनिक तीन नेत्र, सात जिह्वा (जीभ), चार पैर, महान् अद्भुत, बड़े २ दाँत, तीन शिर, दो मुख, दश मुख ॥ १० ॥ छ (६) मुख, पाँच मुख, हाथी के समान मुख, हाथी के समान आकृति (स्वरूप),

सिंह के समान आकृति, महान् भयायक, नृसिंह के समान तेजस्वी ॥ ११ ॥ सिन्दूर से पूजित मुख, महिषासुर के समान, कराल, विकराल, नीलपर्वत के समान प्रभायुक्त ॥ १२ ॥ ऊर्ध्वकेश, दिगम्बर, नरमुण्डधारी, आँतों की माला से युक्त, व्याघ्र चर्मधारी थे ॥ १३ ॥ इसके पूर्व मनुष्यों से अदृष्ट (नहीं देखी गई) ऐसी सेना को विभु (व्यापक) विष्णु भगवान् ने आज्ञा दी कि नृपो मे अधम इस सेना सहित पुलिन्द का मेरी आज्ञा से ॥ १४ ॥

कृतीन् ॥ सिंहाकृतिं महाघोरां नृसिंह इव भास्वराम् ॥ ११ ॥ सिन्दूरचर्चितमुखां महिषासुर-
सदृशाम् ॥ करालान् विकरालांश्च नीलाञ्जनसमप्रभान् ॥ १२ ॥ ऊर्ध्वकेशान् दिग्वसनान् नर-
मुण्डधरांस्तथा ॥ आन्त्रमालाधरां बद्धद्वीपिचर्मपरीवृताम् ॥ १३ ॥ अदृष्टपूर्वां मनुजैः ददावाज्ञां
तदा विभुः ॥ नृपाधमपुलिन्दस्य सबलस्य ममाज्ञया ॥ १४ ॥ नाशं कुरुत यत्नेन यावन्नोदेति
भास्करः ॥ इत्याज्ञां शिरसा कृत्वा प्रविष्टाः परसैनिकान् ॥ १५ ॥ जघ्नुस्ते शस्त्रसम्पातैस्तदा-
कोलाहलोऽभवत् ॥ केचित्खड्गैश्च निहताः खट्वाङ्गाभिहता रुषा ॥ १६ ॥ दंशनैर्दंशिताश्चान्ये

सूर्योदय के पूर्व अच्छी तरह नाश करो। विष्णु भगवान् की आज्ञा को शिर से धारण कर वे विष्णु के सैनिक दल शत्रु सैनिकों मे घुस गये ॥ १५ ॥ और शस्त्र प्रहार कर वध करने लगे जिससे बड़ा कोलाहल मच गया। कुछ खड्ग से मारे गये, कुछ खट्वाङ्ग से वध किये गये ॥ १६ ॥ और कुछ दंशन से दंशित किये गये तथा अन्य लोगों को

कुछ लोग भक्षण कर गये और जो वीर लोग भाग रहे थे उनके पैर पकड़ कर पृथिवी पर गिरा दिये गये ॥ १७ ॥ इस तरह पैदल सेना वीर मार डाले और बहुतों को खा गये । रथी, घोडसवार, घोडा वगैरह अत्यन्त दंशन के द्वारा चूर्ण कर दिये गये ॥ १८ ॥ शिविर मे आग लगाकर भस्म कर दिये, तब उसका बड़ा प्रकाश हुआ उस प्रकाश को देखकर सब विस्मय करने लगे और बोले कि तुम लोग कौन हो ? और कहाँ से आये हो ? ॥१६॥ उन लोगो ने

भक्षिताश्च तथापरे ॥ पलायनपरान् वीरान् पादे धृत्वा न्यपातयन् ॥ १७ ॥ एवं पदातयो वीरा निहता भक्षिताः परे ॥ रथाश्वसादिनो वाहा दशनैश्चूर्णिता भृशम् ॥ १८ ॥ शिविराणि प्रदग्धानि प्रकाशस्तत्र चाभवत् ॥ तदा विसिस्मिरे सर्वे के यूयं कुत आगताः ॥ ११ ॥ नैव ते मानवा वीरा नेक्षिता यत्र कुत्रचित् ॥ इति बुध्वा ततः सर्वे पलायनपराऽभवन् ॥ २० ॥ दृष्ट्वा पलायनपरान् पृष्ठलग्नानि जघ्नतुः ॥ एवं ते निहताः सर्वे पुलिन्दस्य तु सैनिकाः ॥२१॥

इस तरह के वीरों को कहींपर भी नहीं देखा था । अतः उनको मनुष्य न समझ कर सब सैनिक वहाँ से भागने लगे ॥ २० ॥ उनको भागते देखकर उनका पीछा कर मार डाला । इस तरह उस पुलिन्द के समस्त सैनिको को मार डाला ॥ २१ ॥ बाद विष्णुगणों के साथ युद्ध करने के लिये राजा पुलिन्द भी गया और शस्त्र अस्त्र के दारुण

प्रहार से आधा प्रहर तक युद्ध किया ॥ २२ ॥ जब उनके साथ युद्ध करने मे समर्थ न हुआ तब वह मन मे विचार करने लगा कि हम अब यहाँ से भाग जायँ और ये सब यहाँ अवश्य नष्ट हो जायँगे ॥ २३ ॥ मन मे निश्चय कर पुलिन्द ने मेघास्त्र को छोड़ा, जिस मेघास्त्र के द्वारा वहाँ घोर अन्धकार हो गया और मेघ लोग जल वर्षाने लगे

पुलिन्दोऽपि ययौ योद्धुं क्रोधाद्विष्णुगणैः सह ॥ यामार्धमकरोद्युद्धं शस्त्रैरस्त्रैश्च दारुणैः ॥२२॥ न समर्थो यदा योद्धुं तदा मनस्यचिन्तयत् ॥ पलायनमितः कुर्यां युधि क्ष्यन्ति न संशयः ॥ २३ ॥ इति निश्चित्य मनसि मेघास्त्रं त्यक्तवान् स्वयम् ॥ ध्वान्तं तत्राभवद्घोरं वर्षन्ति स्म घनाघनाः ॥ २४ ॥ ववुः प्रचण्डपवनास्तदा सर्वे विमोहिताः ॥ विमूढाः सर्वकार्येषु तस्थिवांसः स्थले स्थले ॥ २५ ॥ पुलिन्दो हयमारुह्य एकाकी स्वपुरं ययौ ॥ हतशेषास्तदा केचित् सैनिका ययुरन्वहम् ॥ २६ ॥ कृत्वा कार्यं ययौ स्थानं भगवान् भक्तवत्सलः ॥ ततः प्रभाते विमले

॥ २४ ॥ तथा प्रचण्ड पवन बहने लगा। उस समय सब मुग्ध हो गये और जहाँ जो था वहाँ कार्य छोड़कर चुपचाप बैठ गये ॥ २५ ॥ घोड़ा पर सवार होकर पुलिन्द एकाकी अपने पुर को चला गया। और कुछ शेष सैनिक भी पुलिन्द के जाने के बाद चले गये ॥ २६ ॥ भक्तवत्सल विष्णु भगवान् भक्त का कार्य कर अपने लोक को चले

गये। प्रातःकाल उठकर नगरवासी आश्चर्य करने लगे ॥ २७ ॥ वहाँ पर शत्रु की सेना न देखकर आखीर में उन लोगों ने निश्चय कर उसे स्वप्न माना और भगवत्प्रिय स्नानादि कर्म किया ॥ २८ ॥ तथा पारण के अन्त में

उत्थिता विस्मिता भृशम् ॥ २७ ॥ नापश्यन् वाहिनीं शत्रोः स्वप्नमेवास्ति निश्चितम् ॥ ततः स्नानादिकं चक्रुः शरणं हरिवल्लभम् ॥ २८ ॥ पारणान्ते वहिर्याताः दृष्टं तत्कौतुकं महत् ॥ अनेकानि च प्रेतानि पतितानि रणाजिरे ॥ २९ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

वाहर आकर उस महान् कौतुक को देखा कि संग्राम के मैदान में अनेकों प्रेत गिरे है ॥ २९ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां उनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥



ऋषि लोग स्कन्दजी से बोले कि हे स्कन्दजी ! आपने समस्त मोहनाशन और अत्यन्त आश्चर्यकारी आख्यान को कहा तथा ज्येष्ठ मास का माहात्म्य कहा और एकादशी के प्रभाव से ॥ १ ॥ वह योगियों का गम्य, सनातन, साक्षात् परब्रह्म शत्रु के संहार के निमित्त आया, जो कि परब्रह्म वचन से भी नहीं कहा जा सकता ॥ २ ॥ इस तरह कहकर वे ऋषि लोग पुनः स्कन्दजी बोले कि हे स्कन्दजी ! उस राजा पुलिन्द ने दुःख से पीड़ित होकर क्या

ऋषय ऊचुः ॥ अत्याश्चर्यं त्वयाऽऽख्यातं सर्वेषां मोहनाशनम् ॥ माहात्म्यं ज्येष्ठमासस्य एकादश्याः प्रभावतः ॥ १ ॥ तत्साक्षात् परमं ब्रह्म योगिगम्यं सनातनम् ॥ आगतः शत्रुसंहारं कर्तुं वाचामगोचरम् ॥ २ ॥ उक्त्वैवं पुनरूचुस्ते स्कन्दं च वदतां वरम् ॥ किं चकार ततो राजा पुलिन्दो दुःखपीडितः ॥ ३ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ततः शोकातुरो राजा कैश्चिच्चमूचरैर्वृतः ॥ तूर्णं स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् ॥ ४ ॥ तद्वाक्यं मनसा ध्यायन् स्वशत्रुपुरवासिनः ॥ एकादश्याः प्रभावं च स्वदृष्टेरपि गोचरम् ॥ ५ ॥ गते बहुतिथे काले चिन्तामग्ने नृपोत्तमे ॥

किया ? ॥ ३ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे ऋषि लोग ! वह शोकातुर राजा पुलिन्द अपने कुछ सैनिकों के साथ शीघ्र नगर को आया और अपने देश का स्वामी हो गया ॥ ४ ॥ अपने शत्रुपुर के वासी लोगों के वचन का मन से ध्यान करता हुआ और एकादशी के प्रभाव का स्मरण करने लगा जिसको स्वयं अपने नेत्रों से देखा था ॥ ५ ॥ इस

तरह चिन्ता में मग्न राजा पुलिन्द का बहुत समय बीत गया और शरीर में हड्डी चाम शेष रह गया तब पुलिन्द ने अपने पुत्र को राज्य दे दिया ॥ ६ ॥ और स्वयं स्त्री के साथ वन को चला गया तथा वहाँ जाकर वानप्रस्थ आश्रम को किया। वानप्रस्थ आश्रम में राजा पुलिन्द को एकादशी के सम्बन्ध में प्रश्न करते १२ दिन बीत गये कि हे तपोधन लोग! ॥ ७ ॥ पापनाशन एकादशी का व्रत किस विधि से किया जाता है? जो कि व्रत तीनों लोक में

अस्थिचर्मावशेषे तु ददौ राज्यं नृपात्मजे ॥ ६ ॥ सपत्नीको वनं यातो वानप्रस्थं चकार सः ॥ द्वादशाहे त्वतिक्रान्ते पृष्टमाने तपोधनाः ॥ ७ ॥ कथमेकादशीनाम व्रतं पापप्रणाशनम् ॥ दुर्लभं त्रिषु लोकेषु पावनं हरिवल्लभम् ॥ ८ ॥ अहो तस्य महाश्चर्यं मया दृष्टं न संशयः ॥ ततः पूर्वभवात् पुण्यनिचयान्मुनिपुङ्गवाः ॥ ९ ॥ दत्तात्रेयं समभ्यागात् वरेण्यस्याश्रमं शुभम् ॥ सर्वे ऋषिगणास्तत्र आगता दर्शनोत्सुकाः ॥ १० ॥ केचित् पूजास्तवं चक्रुः सेवां च विविधां तथा ॥

दुर्लभ पावन और भगवान् का प्रिय है ॥ ८ ॥ अहो (आश्चर्य है) मैंने उस एकादशी व्रत का महान् आश्चर्यकारी कार्य देखा, इसमें संशय नहीं है। हे ऋषि लोग! तदनन्तर पूर्व के पुण्यपुञ्ज से वरेण्य ऋषि के पवित्र आश्रम में ॥ ९ ॥ दत्तात्रेय ऋषि आये, और उन दत्तात्रेय के दर्शन की लालसा से वहाँ समस्त ऋषिगण आये ॥ १० ॥

कुछ लोगों ने पूजन, स्तुति तथा विविध प्रकार की सेवा की। राजा पुलिन्द ने भी दत्तात्रेयजी का आगम सुना और वहाँ जाकर भयभीत के समान बैठ गया ॥ ११ ॥ प्रधान ऋषियों के चले जाने पर राजा पुलिन्द दत्तात्रेयजी के निकट गया और दण्डवत् कर दूसरे विन्ध्यपर्वत के समान पृथिवी पर गिर गया ॥ १२ ॥ दत्तात्रेय ऋषि बोले कि हे सौम्य ! उठो उठो, तुम कौन हो, और किस लिये यहाँ आये हो ? । तुम्हारे दुःख का जो कुछ कारण हो उसको

जगाम सोऽपि तच्छ्रुत्वा भीतभीत इव स्थितः ॥ ११ ॥ गतेषु ऋषिमुख्येषु राजा निकटमाययौ ॥ दण्डवत् पतितो भूमौ विन्ध्याचल इवापरः ॥ १२ ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कोऽसि त्वं किमर्थमिह चागतः ॥ वदस्व सकलं मे यत्तव दुःखस्य कारणम् ॥ १३ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्य नोत्तस्थौ भृशदुःखितः ॥ तत उत्थापयामास स्वकरेण नृपोत्तमम् ॥ १४ ॥ उवाच नृपशार्दूलो ज्ञात्वा तस्यातिसौहृदम् ॥ पुलिन्दोऽहं नृपश्रेष्ठो विख्यातो जगतीतले ॥ १५ ॥ जित्वा च सकलं

तुम मुझसे कहो ॥ १३ ॥ दत्तात्रेयजी के वचन को सुनकर भी अत्यन्त दुःख से पीड़ित वह पुलिन्द जब नहीं उठा तब उस राजश्रेष्ठ पुलिन्द को दत्तात्रेयजी ने स्वयं अपने हाथों से उठाया ॥ १४ ॥ राजश्रेष्ठ पुलिन्द ने उठकर दत्तात्रेयजी का अति सुन्दर हृदय जानकर कहा कि मैं जगतीतल में विख्यात पुलिन्द नामक श्रेष्ठ राजा हूँ ॥ १५ ॥

हे तात ! क्षणमात्र में पृथिवीमण्डल को जीत कर और गर्व मे होकर राजा प्राचीनवर्ही के नगर को गया ॥ १६ ॥
वहाँ जाकर उस विष्णुभक्त राजा के नगर को पीड़ित करने पर ग्रामवासी कोई मनुष्य मेरे पास आया ॥ १७ ॥
और मुझसे वह वचन बोला कि आज ही हरि भगवान् का पवित्र दिन है, आज कल्ह उस राजा के विषय में क्षमा
करे, क्योंकि समस्त नगरवासी व्रत मे लीन हैं ॥ १८ ॥ उस ग्रामवासी के वचन को सुनकर मद गर्व से मोहित होने

तात वसुधामण्डलं क्षणात् ॥ ततोऽहं गर्वमासाद्य गतः प्राचीनर्वाहिंषम् ॥ १६ ॥ पीडितं तस्य
नगरं विष्णुभक्तस्य भूभुजः ॥ ग्रामवासी नरः कश्चिदागतो मम सन्निधौ ॥ १७ ॥ उवाचेदं वचो
मह्यं अद्यैवास्ति हरेर्दिनम् ॥ अद्य श्वस्तं क्षमस्वेति सर्वे व्रतपरायणाः ॥ १८ ॥ इति तस्य वचः
श्रुत्वा मदगर्वेण मोहितः ॥ अवमन्य च तद्वाक्यं न जहौ मां तथामतिम् ॥ ११ ॥ एवमस्तमिते
भानौ विष्णुमायाविनिर्मिताः ॥ दूताः सहस्रशो योद्धुं आगताः शतशस्तदा ॥ २० ॥ तैर्भक्षितं

के कारण मैंने उसके वचन का अपमान किया, उसके वचन मेरी मत्त और गर्वित बुद्धि को न छोड़ा सके ॥ १६ ॥
इसके बाद सूर्यास्त हो जाने पर विष्णु भगवान् की माया से निर्मित असंख्य दूत युद्ध के लिये वहाँ आये ॥ २० ॥
उन विष्णुदूतों ने समुद्र समान मेरे समस्त सैनिकों का भक्षण कर लिया, और प्राणमात्र शेष रह जाने पर हम लोग

वहाँ से भागकर अपने नगर को आये ॥ २१ ॥ उस समय से भ्रमण करता हुआ एकादशी व्रत को जानने की इच्छा से राज्य पुत्र धन का त्यागकर तापसी वृत्ति का आश्रय लिया है ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! मैं धन्य हूँ, और मैं कृतकृत्य हो गया, तथा मेरे पूर्वज पुण्यशाली थे जो कि आज देवताओं से पूजित आपके चरणों का मुझे दर्शन हुआ ॥२३॥

हि तत्सर्वं सैन्यं सागरसन्निभम् ॥ प्राणशेषा वयं याताः पलाय्य निजपत्तनम् ॥ २१ ॥ तदादि
भ्रममाणोऽहं ज्ञातुमेकादशीव्रतम् ॥ त्यक्त्वा राज्यं सुतधनं तापसीं वृत्तिमाश्रितः ॥ २२ ॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं पूर्वजाः पुण्यशालिनः ॥ यद्दृष्टं भवतां पादपद्मं सुरवरार्चितम् ॥ २३ ॥
कथमेकादशी नाम कार्यं व्रतमनुत्तमम् ॥ समासेन विधिं ब्रूहि यतस्त्वां शरणागतः ॥ २४ ॥
नो चेत्त्यक्ष्यामि वै प्राणान् अहं शल्यसमानि ते ॥ २५ ॥ इति वचो वदति तच्च पुलिन्दनाथे

हे भगवन् ! एकादशी नामक व्रत कैसा होता है और किस विधि से किया जाता है ? उसे संक्षेप में मुझसे कहिये क्योंकि मैं आपके शरणागत हूँ ॥ २४ ॥ नहीं तो मैं शल्यसमान प्राणों का त्याग कर दूँगा ॥ २५ ॥ राजा पुलिन्द के इस वचन को सुनकर सकल वृत्तान्त वेत्ता दत्तात्रेयजी उस समय राजा पुलिन्द को दोनो हाथों से आलि-

ङ्गन कर और दयार्द्रचित्त होकर मधुसूदन भगवान् के एकादशी व्रत का विधान कहा ॥ २६ ॥ इति श्री

दत्तात्रेयोऽपि सकलार्थवित्तदानीम् ॥ दोर्भ्यामालिङ्ग्य नृपतिं करुणेन्द्रचित्तो ऊचे तथा व्रतविधिं मधुसूदनस्य ॥ २६ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥



दत्तात्रेयजी बोले कि हे राजन्! सुनिये, मैं विधिपूर्वक ए[illegible] व्रत को कहूँगा। हे नृप! दशमी के दिन प्रातःकाल उठकर शौचविधि को करे ॥ १ ॥ काष्ठ को दतुअन का त्यागकर पके हुये पत्रों से दांतों को शुद्ध करे। महानदी में मन्त्रपाठ पूर्वक पञ्चगव्य से स्नान करे ॥ २ ॥ सन्ध्यादिक कर्मकर शुक्ल वस्त्र पहिनकर गृह को जाय। उदुम्बर (गूलर) के पात्र में जल पूर्णकर उत्तर मुख हो जाय ॥ ३ ॥ और देश काल का उच्चारण कर ब्राह्मणों को

दत्तात्रेय उवाच ॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि तद्व्रतं विधिपूर्वकम् ॥ दशम्यां प्रातरुत्थाय कृत्वा शौचविधिं नृप ॥ १ ॥ वर्जयेद्दन्तकाष्ठानि पक्वपर्णैश्च शोधयेत् ॥ स्नानं कृत्वा महानद्यां पञ्चगव्यैः समन्त्रकम् ॥ २ ॥ कृत्वा सन्ध्यादिकं कर्म शुक्लवासा गृहं व्रजेत् ॥ गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ॥ ३ ॥ देशकालं समुच्चार्य प्रणम्य द्विजपुङ्गवान् ॥ अद्य देवेश ते भक्त्या करिष्ये व्रतमुत्तमम् ॥ ४ ॥ परान्नं च पुनर्भुक्तं आमिषं वपनं तथा ॥ दशम्यां वर्जयेद्राजन् तैलेनाभ्यञ्जनं पुनः ॥ ५ ॥ हविष्याद्व्यतिरिक्तं यत् तत्सर्वमामिषं स्मृतम् ॥ अतः सर्वप्रयत्नेन

प्रणामकर कहे कि हे देवेश! आज भक्ति से आपका उत्तम व्रत करूँगा ॥ ४ ॥ हे राजन्! दशमी के दिन परान्न (दूसरे का अन्न), दो बार भोजन, आमिष (मांस), वपन (क्षौर), और शरीर में तैल का अभ्यञ्जन (लगाना) त्याग दे ॥ ५ ॥ हे राजन्! हविष्यान्न के अतिरिक्त सभी पदार्थ आमिष कहे गये है। इस लिये दशमी के दिन

सब प्रयत्न से थोड़ा हविष्यान्न भोजन करे ॥ ६ ॥ रात्रि मे कथाश्रवण आदि के द्वारा जागरण करे, वाद अरुणोदय होने पर निर्मल जल से स्नान करे ॥ ७ ॥ पूजागृह में आकर नित्य सन्ध्यादिक कर्म को करे। एकादशी के दिन चित्त में किसी तरह का विकार न हो, और प्राकृत विषयों में मन को न लगावे ॥ ८ ॥ और सहस्रनाम को कहकर तुलसीदल से विष्णु भगवान् का पूजन करे, तथा पुरुषसूक्त और पवमान मन्त्रों से जनार्दन भगवान् का

दशम्यां हविरल्पभुक् ॥ ६ ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा सत्कथाश्रवणादिभिः ॥ ततोऽरुणोदये जाते स्नात्वा निर्मलवारिणा ॥ ७ ॥ पूजागारे समागम्य नित्यं सन्ध्यादिकं चरेत् ॥ न किञ्चिद्वैकृतं चित्ते प्राकृतं नावलोकयेत् ॥ ८ ॥ सहस्रनामभिर्विष्णोः पूजनं तुलसीदलैः ॥ तथा सूक्तैः पावमानैरभिषिञ्च जनार्दनम् ॥ ९ ॥ भेषजं चानृतं स्वापं प्रेक्षणं भाषणं स्त्रियः ॥ क्रोधं पारुष्यमालापं काष्ठैर्वा दन्तधावनम् ॥ १० ॥ एकादश्यां न कुर्वीत सर्वैरेतत्फलार्थिभिः ॥ यामे यामे प्रकर्तव्या पूजा देवस्य चक्रिणः ॥ ११ ॥ अहोरात्रमिदं कर्यं गीतवादित्रनिस्वनैः ॥ ततः प्रभातसमये

अभिषेक करे ॥ ९ ॥ औषध, मिथ्या भाषण, शयन, स्त्री के साथ निगाहचार और भाषण, क्रोध, कटुवचन, आलाप, काष्ठ के दतुअन से दांतों का मर्दन ॥ १० ॥ एकादशी के दिन व्रतफल को चाहने वाले इन कामों को न करें और प्रत्येक प्रहर में चक्रपाणि विष्णु भगवान् का पूजन करना चाहिये ॥ ११ ॥ इस तरह गीत (गान) वादित्र (वाद्य)

के द्वारा अहोरात्र (दिन रात) इस उत्सव को करे। दूसरे दिन प्रातःकाल जितनी द्वादशी हो ॥ १२ ॥ उस शेष द्वादशी में भक्तियुक्त चित्त से पारण करे। द्वादशी में पारण न करने से पुण्य की हानि अवश्य हो जायगी ॥ १३ ॥ इसलिये सर्व प्रयत्न से द्वादशी मे पारण करना शुभदायक होता है। हे वत्स! व्रतियों को सम्पूर्ण व्रतफल की सिद्धि के लिये द्वादशी में पारण करना चाहिये ॥ १४ ॥ पारण के दिन बहुत से ब्राह्मणों को भोजन करावे,

यावती द्वादशी भवेत् ॥ १२ ॥ तावत्यां पारणं कुर्याद्भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ नो चेत्सर्वस्य पुण्यस्य हानिर्भवति निश्चितम् ॥ १३ ॥ अतः सर्वप्रत्नेन द्वादश्याः पारणं शुभम् ॥ कर्तव्यं व्रतिभिर्वत्स सम्पूर्णफलसिद्धये ॥ १४ ॥ पारणाहे बहून् विप्रान् अशक्तौ द्वादशानपि ॥ पूजयेदुपचारैश्च भोजयेत्तापसांस्तथा ॥ १५ ॥ आतृप्तेस्तृप्तिपर्यन्तं भोजयेत् खण्डपायसैः ॥ भोजयित्वा द्विजान् श्रेष्ठान् स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥ १६ ॥ परान्नमामिषं मांसं माषं तैलं स्त्रियं मधु ॥ भेषजं मत्सरं

असमर्थ के लिये १२ ब्राह्मणों को भोजन कराना कहा है। पूजन सामग्री से पूजन कर तपस्वियों को भोजन करावे ॥ १५ ॥ तृप्ति पर्यन्त शर्करायुक्त पायस का भोजन करावे और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर मौनपूर्वक स्वयं भोजन करे ॥ १६ ॥ परान्न, आमिष (हविष्यातिरिक्त वस्तु), मांस, माष (उरदी), तैल, स्त्री, मधु (सहद),

औषध, मत्सर (दूसरे का अशुभ चिन्तन), हिंसा, कांस्य (कांसे के पात्र में भोजन), ताम्बूलभक्षण ॥ १७ ॥ वपन (चौर) और दो बार भोजन सर्वदा द्वादशी के दिन त्याग करे। यह व्रतों मे उत्तम व्रत तीन दिन से साध्य होता है ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिये, और अन्न का तो सर्वथा त्याग करी देना चाहिये। यदि एकादशी के दिन अन्न का भक्षण करता है तो उसको नरक होता है ॥ १९ ॥ द्रव्य (पदार्थ),

हिंसां कांस्यं ताम्बूलभक्षणम् ॥ १७ ॥ वपनं च पुनर्भुक्तिं द्वादस्यां वर्जयेत् सदा ॥ दिनैस्त्रिभिरिदं साध्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ १८ ॥ एकादश्यां न कर्तव्यं भोजनं नृपसत्तम ॥ अन्नं तु सर्वथा वर्ज्यं भक्षणान्नरकं व्रजेत् ॥ १९ ॥ द्रव्यं जलं च लवणं वह्निना यत्र पच्यते ॥ तदेवान्नं भवेत्तत्र न चान्यद्धान्यसम्भवम् ॥ २० ॥ धान्यं भक्षति यो मोहात् सम्प्राप्ते हरिवासरे ॥ चान्द्रायणशतं कृत्वा मुच्यते पातकाद्भृशम् ॥२१॥ इति ते कथितं राजन् यत् पृष्टं च त्वया मम ॥

जल, लवण (नमक) जहाँ अग्नि में पकाये जाते है वहाँ उसी को अन्न कहा है। अन्य धान्य से सिद्ध जो अन्न है वह अन्न इसमें नहीं लिया है ॥ २० ॥ जो मोहवश एकादशी के दिन धान्य (चावल) का भोजन करता है, वह सौ चान्द्रायण व्रत करके पाप से मुक्त होता है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जो तुमने पूछा उसका उत्तर मैंने दिया। राजा

पुलिन्द बोले कि हे तात ! आपने परम अद्भुत जो रहस्य कहा है ॥ २२ ॥ उसके अनुष्ठान के लिये मैं अशक्त हूँ, क्योंकि मेरा शरीर जर्जर हो गया है । इस लिये आप कृपाकर इसके सार के सार को ठीक २ कहिये ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! सार पदार्थ समस्त कर्मों के होते हैं । दत्तात्रेयजी बोले कि हे महाबाहो ! मैं परम अद्भुत रहस्य तुमसे कहता हूँ ॥ २४ ॥ जिसके अनुष्ठानमात्र से समस्त कार्य सफल होता है । हे राजन् ! ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष की

पुलिन्द उवाच ॥ त्वया यत् कथितं तात रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ २२ ॥ अनुष्ठितुमशक्तोऽहं यस्य मेहक् कलेवरम् ॥ अतस्त्वं कृपया ब्रूहि सारात् सारं यथोदितम् ॥ २३ ॥ सर्वेषामेव कार्याणां सारमस्ति न संशयः ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ कथयामि महाबाहो रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ २४ ॥ यस्यानुष्ठानमात्रेण सकलं सफलं भवेत् ॥ शुक्लस्यैकादशी शुक्ला कुरुष्व जलवर्जिता ॥ २५ ॥ तस्यानुष्ठानमात्रेण पूर्णं भवति निश्चितम् ॥ पुलिन्द उवाच ॥ शुक्लस्यैकादशी शुक्ला सा कथं जलवर्जिता ॥ २६ ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ प्राचीनबर्हिषा पूर्वं सकलं हरिवासरे ॥ कृतं जलविहीनं

एकादशी का निर्जल व्रत करो ॥ २५ ॥ हे राजन् ! इसके अनुष्ठानमात्र से व्रत पूर्ण हो जाता है, इसमे संशय नहीं है । राजा पुलिन्द बोले हे दत्तात्रेयजी ! ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष की एकादशी निर्जला क्यों हुई ? ॥ २६ ॥ दत्तात्रेयजी बोले कि हे राजन् ! प्रथम राजा प्राचीनबर्हि ने एकादशी के दिन सम्पूर्ण व्रत जलरहित किया, इस लिये

एक्रादश। जलवर्जित हुई ॥ २७ ॥ निर्जला नाम से प्रसिद्ध एकादशी स्मरणमात्र से पापनाशिनी कही है। यह कहकर दत्तात्रेयजी चले गये। बाद राजा पुलिन्द ने भी इस व्रत को विधिपूर्वक किया ॥ २८ ॥ इस एकादशी व्रत के अनुष्ठानमात्र से पुण्यराशि के द्वारा राजा पुलिन्द दूसरे जन्म में प्रह्लाद नाम-से प्रसिद्ध हिरण्यकशिपु का पुत्र हुआ ॥ २६ ॥ वेदव्यासजी बोले कि हे भीमसेन! यह प्राचीन इतिहास मैंने तुमसे कहा, जिसके श्रवण से तुम्हारा

यत् ततः सा जलवर्जिता ॥ २७ ॥ निर्जलेति समाख्याता स्मरणादघनाशिनी ॥ ऋषौ याते पुलिन्दोऽपि चकार विधिपूर्वकम् ॥ २८ ॥ तस्यानुष्ठानमात्रेण पुण्यस्यातिशयेन च ॥ प्रह्लादो नाम विख्यातो हिरण्यकशिपोः शिशुः ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ एतत्ते कथितं भीम इतिहासं पुरातनम् ॥ संशयस्य निरासार्थं किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३० ॥ भीमसेन उवाच ॥ नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादात् पितामह ॥ स्थितोऽस्मीति न सन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥ ३१ ॥

संशय दूर हो। हे भीम! अब तुम क्या सुनना चाहते हो? ॥ ३० ॥ भीमसेन बोले कि हे पितामह! आपके प्रसाद से मोह नष्ट हुआ और स्मरण शक्ति मिली। हे तात! व्रत करने के लिये मैं तैयार होकर बैठा हूँ, मैं आपके वचन का पालन करूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ३१ ॥ स्कन्दजी ऋषियों से बोले कि हे ऋषिलोग! वेदव्यासजी के कथ-

नानुसार इस व्रत को भीमसेन ने भी किया, और चक्रपाणि विष्णु भगवान् के प्रसाद से समस्त पापों से मुक्त हो

स्कन्द उवाच ॥ भीमेनापि कृतं तच्च व्यासेन कथितं यथा ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ ३२ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

गये ॥ ३२ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥



स्कन्दजी ऋषियो से बोले कि हे ऋषि लोग ! इसी ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त तीन दिन का वटसावित्री नाम से प्रसिद्ध व्रत जो कहा गया है उस व्रत को स्त्रियाँ सौभाग्यसिद्धि के लिये पूर्णिमा के दिन करें ॥ १ ॥ और पतिव्रता स्त्री पूर्णिमा के दिन उपवास कर प्रतिपत् तिथि मे पारण करे। ऋषि लोग बोले कि हे महासेन (स्कन्दजी) ! हे षडानन ! आप इस व्रत की विधि कहिये ॥ २ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे विप्र लोग !

स्कन्द उवाच ॥ अस्यैव शुक्लपक्षस्य त्रयोदश्यादितः शुभम् ॥ पौर्णमास्यां व्रतं कार्यं स्त्रीभिः सौभाग्यसिद्धये ॥ १ ॥ तत्रैवोपोषणं कार्यं पारणं प्रतिपत्तिथौ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ विधिं ब्रूहि महासेन व्रतस्यास्य षडानन ॥ २ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ज्येष्ठे मासे तु सम्प्राप्ते पौर्णमास्यां पतिव्रता ॥ शुचिर्भूत्वा वटं सिञ्चेज्जलैरमृतसन्निभैः ॥ ३ ॥ सूत्रेण वेष्टयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः शुभैः ॥ नमो वैवस्वतायेति भ्रामयन्ती प्रदक्षिणाम् ॥ ४ ॥ रात्रौ कुर्वीत नक्तं च ह्यब्दमेकं समा-

ज्येष्ठमास आने पर पूर्णिमा के दिन पवित्र होकर पतिव्रता स्त्री अमृतसमान जल से वटवृक्ष का सिञ्चन करे ॥ ३ ॥ और सुन्दर गन्ध अक्षत पुष्प से पूजन कर भक्ति से 'नमो वैवस्वताय' इस मन्त्र को जपता हुआ वटवृक्ष की प्रदक्षिणा के साथ उसमें सूत्र को वेष्टित करे ॥ ४ ॥ और इस व्रत को समाहित चित्त से एक वर्ष करे तथा रात्रि मे भोजन

करे। और वर्ष के प्रत्येक पक्ष मे वटवृक्ष का पूजन करे ॥ ५ ॥ पुनः ज्येष्ठमास आने पर द्वादशी के दिन लघु भोजन करे और त्रयोदशो को प्रातःकाल दन्तधावन कर नियम ग्रहण करे ॥ ६ ॥ कि हे जगद्धात्रि ! आज से लेकर मैं तीन रात्रिपर्यन्त लंघन (उपवास) व्रत करूँगी और चतुर्थ दिन चन्द्रमा को अर्घ्य देकर उस सती सावित्री का पूजन करूँगी ॥ ७ ॥ यथाशक्ति ब्राह्मणों को मिष्टान्न भोजन कराकर भोजन करूँगी, हे शुभे ! मेरे व्रत को निर्विघ्न पूर्ण

हिता ॥ तथैव वटवृक्षं च पक्षे पक्षे प्रपूजयेत् ॥ ५ ॥ सम्प्राप्ते च पुनर्ज्येष्ठे लघुभुक् द्वादशीं नयेत् ॥ दन्तानां धावनं कृत्वा नियमं कारयेत्ततः ॥ ६ ॥ त्रिरात्रं लङ्घयिष्यामि चतुर्थदिवसे ह्यहम् ॥ चन्द्रायार्घ्यं प्रदत्वा च पूजयित्वा च तां सतीम् ॥ ७ ॥ मिष्टान्नानि यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ भोक्ष्येऽहं च जगद्धात्रि निर्विघ्नं कुरु मे शुभे ॥ ८ ॥ ततो वंशमयं पात्रं सप्तधान्यभृतं च यत् ॥ कलशोपरि संस्थाप्य प्रतिमां वस्त्रसंयुताम् ॥ ९ ॥ ब्रह्मणा सह सावित्र्याः सौवर्णीं प्रतिमां शुभाम् ॥ तथैव यमधर्मस्य कारयेत्पूजयेत्तथा ॥ १० ॥ न्यग्रोधस्य शुभे मूर्ध्नि

करें ॥ ८ ॥ तदनन्तर सप्तधान्य से पूर्ण वांस के पात्र को कलश के ऊपर स्थापित करे और उस वंशपात्र पर वस्त्र सहित प्रतिमा स्थापित करे ॥ ९ ॥ सुवर्ण की प्रतिमा ब्रह्मा और सावित्री की तथा धर्मराज की प्रतिमा बनाकर पूजन करे ॥ १० ॥ वट वृक्ष के मूल भाग मे स्थापित घट के ऊपर प्रतिमा तीन दिन तक स्थापित करे। पूर्णिमा के दिन

प्रातःकाल उठकर स्नानादि नित्यक्रिया कर सम्यक् पूजन करे ॥ ११ ॥ और सत्यवान् सावित्री की प्रतिमा स्वर्णमयी बनाकर रजत (चाँदी) की शय्या पर स्थापित कर काष्ठ का भार (बोझ) रखे ॥ १२ ॥ तथा यमराज के निमित्त भक्ति से दीपदान करे। जो पतिव्रता स्त्री यमराज के निमित्त भक्ति से दीपदान देती है ॥ १३ ॥ वह पतिव्रता स्त्री पति के साथ समस्त सुख की भागिनी होती है। स्त्री हो, विधवा हो, अपुत्री हो, कुमारी हो ॥ १४ ॥ सभर्तृका

त्रिदिनं तत्र वासयेत् ॥ पूर्णायां प्रातरुत्थाय स्नात्वा सम्यक् प्रपूजयेत् ॥ ११ ॥ सत्यवन्तं च सावित्रीं कृत्वा स्वर्णमयीं तथा ॥ पर्यङ्के राजते स्थाप्य काष्ठभारं तथाकृतम् ॥ १२ ॥ तथैव यममुदिश्य दीपदानं प्रचक्षते ॥ ददाति यममुद्दिश्य भक्त्या दीपं पतिव्रता ॥ १३ ॥ सा भर्तृ-सहिता साध्वी समस्तसुखभागिनी ॥ नारी वा विधवा वापि अपुत्री वा कुमारिका ॥ १४ ॥ सभर्तृका सपुत्रा वा कार्यं व्रतमिदं शुभम् ॥ १५ ॥ ॐकारपूर्वके देवि वीणापुस्तकधारिणि ॥ वेदगर्भे नमस्तेऽस्तु अवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥ १६ ॥ पतिव्रते महाभागे वह्निजाये शुचिस्मिते ॥

(पतियुक्ता) हो या सपुत्रा हो सभी स्त्रियाँ इस व्रत को करें ॥ १५ ॥ अर्घ्य का मन्त्र—हे ओङ्कारपूर्वके ! हे देवि ! हे वीणापुस्तकधारिणि ! हे वेदगर्भे ! आपको नमस्कार है, हे देवि ! आप मुझे अवैधव्य (पति सौभाग्य) प्रदान करें ॥ १६ ॥ हे पतिव्रते ! हे महाभागे ! हे वह्निजाये ! हे शुचिस्मिते ! हे दृढव्रते ! हे दृढमते ! हे पति के निमित्त

दृढव्रते दृढमते भर्तुश्च प्रियवादिनि ॥ १७ ॥ अवैधव्यं च सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते ॥ पुत्रान् पौत्रांश्च सख्यं च गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥१८॥ त्वयाऽऽवृतं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ सत्यव्रतधरो देव ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ॥१९॥ त्वं कर्मसाक्षी लोकानां शुभाशुभविवेककृत् ॥ वैवस्वत गृहाणार्घ्यं धर्मराज नमोऽस्तु ते ॥२०॥ धर्मराजः पितृपतिः साक्षीभूतो हि जन्तुषु ॥ धर्मरूप गृहाणार्घ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥२१॥ एवं सांवत्सरं कार्यमशक्तौ माससमात्रकम् ॥ तदशक्तौ त्रिरात्रं वा पौर्ण-

प्रिय भाषण करनेवाली ॥ १७ ॥ हे सुव्रते ! मुझे आप अवैधव्य (पतिसौभाग्य) और सौभाग्य (सुख) तथा पुत्र पौत्र और सख्य (मैत्र सम्बन्ध) का प्रदान करे। हे सुव्रते ! आप इस अर्घ्य को ग्रहण करें, आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे देव ! आपसे देवता असुर दानव मनुष्य समेत समस्त जगत् व्याप्त है, हे देव ! आप सत्यव्रत को धारण करनेवाले हैं, हे ब्रह्मरूप ! आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे वैवस्वत ! आप समस्त लोकों के कर्मसाक्षी हैं और शुभ अशुभ कर्म के विचारकर्ता हैं, आप इस अर्घ्य को ग्रहण करें, हे धर्मराज ! आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ हे धर्मरूप ! आप धर्मराज हैं, पितरों के स्वामी हैं, समस्त जीवों के साक्षीभूत हैं, आप इस अर्घ्य को ग्रहण करें और मुझे अवैधव्य (पति सौभाग्य) का प्रदान करे ॥ २१ ॥ इस तरह एक वर्ष पर्यन्त व्रत करे, असमर्थ स्त्री एक मास व्रत करे, यदि

एक मास व्रत करने का सामर्थ्य न हो तो तीन दिन का व्रत करे, अथवा विशेष रूप से पूर्णिमा के दिन उपवास करे ॥ २२ ॥ इस तरह पवित्रात्मा एक मास उपवास व्रत करे। जो कुलाङ्गना ज्येष्ठमास में प्रातःकाल स्नान नहीं करतीं है ॥ २३ ॥ तो महान् व्रत करने पर भी उन स्त्रियों का दौर्भाग्य होता है। जैसे अपवित्र अर्क (आक) वृत्त का समस्त वस्तु निष्फल होता है ॥ २४ ॥ उसी तरह समस्त कर्म करनेवाले मनुष्य का ज्येष्ठमास में प्रातःकाल स्नान

मास्यां विशेषतः ॥२२॥ उपोष्यैवं व्रतं कुर्यात् शुचिष्मान् मासमात्रकम् ॥ प्रातःस्नानमकृत्वा तु ज्येष्ठे मासि कुलस्त्रियः ॥ २३ ॥ तासामवश्यं दौर्भाग्यं कृतेऽपि च महाव्रते ॥ अशुचेश्च यथाऽर्कस्य सकलं निष्फलं तथा ॥ २४ ॥ प्रातःस्नानविहीनस्य ज्येष्ठे कर्मवतां नृणाम् ॥ एवं सर्वं समाख्यातं सावित्र्यास्त्रिदिनव्रतम् ॥ २५ ॥ ज्येष्ठी ज्येष्ठायुता चेत्स्याच्छत्रोपानत्प्रदानतः ॥ नराधिपत्यमाप्नोति नियमेन नराधिप ॥ २६ ॥ माहात्म्यं ज्येष्ठमासस्य संक्षेपेण यथोदितम् ॥ अग्रे सर्वं

न करने से सब निष्फल हो जाता है। हे ऋषि लोग! सावित्री को तीन दिन का व्रत तथा उसका सब विधान आप लोगों से कहा ॥ २५ ॥ व्यासजी राजा युधिष्ठिर से कहते हैं कि हे नराधिप! ज्येष्ठमास की पूर्णिमा ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त हो तो छाता जूता दान करने से नराधिप (राजा) होता है ॥२६॥ यह मैंने यथोक्त ज्येष्ठमास का माहात्म्य

संक्षेप में कहा है । और आपकी भक्ति से प्रसन्न होकर शेष जो कुछ है वह सब भी कहूँगा ॥ २७ ॥ वह पापों का नाश करने वाली पवित्र कथा है और जो कुछ आश्चर्यकारी माहात्म्य है उसको भी कहूँगा ॥ २८ ॥ इति श्री

वदिष्यामि युष्मद्भक्तिसुतोषितः ॥ २७ ॥ कथां पापहरां पुण्यां महाश्चर्यकरं हि यत् ॥ २८ ॥
इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषा-टीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥



स्कन्दजी ऋषियों से बोले और वेदव्यासजी राजा युधिष्ठिर से बोले कि हे राजन्! हे युधिष्ठिर! श्रेष्ठ स्त्रियों का महाभाग्य वर्णन करूँगा। और राजकन्या सावित्री ने जिस तरह समस्त वस्तुओं को प्राप्त किया उसको आप श्रवण करें ॥ १ ॥ मद्रदेश में परम धार्मिक धर्मात्मा राजा रहता था वह ब्रह्मण्य, शरणागत का रक्षक, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय ॥ २ ॥ यज्ञ करनेवाला, दानपति, शूर और पुरवासी देशवासी जनों का प्रिय था तथा समस्त प्राणियों के

स्कन्द उवाच ॥ शृणु राजन् वरस्त्रीणां महाभाग्यं युधिष्ठिर ॥ सर्वमेतद्यथा प्राप्तं सावित्र्या राजकन्यया ॥ १ ॥ अस्ति मद्रेषु धर्मात्मा राजा परमधार्मिकः ॥ ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥ २ ॥ यज्वा दानपतिः शूरो पौरजानपदप्रियः ॥ पार्थिवोऽश्वपतिर्नाम सर्वभूतहिते रतः ॥ ३ ॥ क्षमावाननपत्यश्च सत्यवाक् संयतेन्द्रियः ॥ अतिक्रान्तेन वयसा सन्तानं नाशु जग्मिवान् ॥ ४ ॥ अपत्योत्पादनार्थं च क्षिप्रं नियममास्थितः ॥ काले परिमिताहारो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ हुत्वा शतसहस्रं स सावित्र्या राजसत्तमः ॥ षष्ठे षष्ठे तथा काले बभूवा-

हित में रत, पृथिवीश्वर अश्वपति नाम से विख्यात था ॥ ३ ॥ राजा अश्वपति क्षमाशील, सत्यवक्ता, जितेन्द्रिय और सन्तानहीन था। अधिक अवस्था हो जाने पर भी उसको सन्तति न हुई ॥ ४ ॥ अश्वपति राजा ने सन्तान के लिये नियम ग्रहण कर समय पर परिमित भोजन, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन, इन्द्रिय निग्रह कर ॥ ५ ॥ एक लक्ष आहुति

सावित्री मन्त्र से देकर षष्ठ काल में अमित (इच्छा पूर्वक) भोजन करता था ॥ ६ ॥ इस तरह नियम पालन करते राजा अश्वपति को अठारह (१८) वर्ष बीत गया । अठारह वर्ष पूर्ण होने पर सावित्री प्रसन्न हुई ॥ ७ ॥ हे राजन् ! और अग्निहोत्र से प्रकट होकर राजा को रूपवती सावित्री ने दर्शन दिया ॥ ८ ॥ तथा वर देने के निमित्त राजा अश्वपति से बोली । सावित्री ने कहा कि हे पार्थिव ! तुम्हारे ब्रह्मचर्य, शुद्धता, नियम, इन्द्रियदमन ॥ ९ ॥ सर्वात्म-

मितभोजनः ॥ ६ ॥ एतेन नियमेनास्य वर्षाण्यष्टादशैव तु ॥ पूर्णे चाष्टादशे वर्षे सावित्री तुष्टि-
मभ्यगात् ॥ ७ ॥ रूपिणी तु तदा राजन् दर्शयामास तं नृपम् ॥ अग्निहोत्रात् समुत्थाय हर्षेण
महतान्विता ॥ ८ ॥ उवाचैनं च वरदा वचनं पार्थिवं तथा ॥ सावित्र्युवाच ॥ ब्रह्मचर्येण शुद्धेन
नियमेन दमेन च ॥ ९ ॥ सर्वात्मना च भक्त्या च तुष्टास्मि तव पार्थिव ॥ वरं ब्रूहि चाश्वपते
मद्रराज यथेप्सितम् ॥ १० ॥ न प्रमादश्च धर्मेषु कर्तव्यस्ते कथञ्चन ॥ अश्वपतिरुवाच ॥
अपत्यार्थः समारम्भः कृतो धर्मेप्सया मया ॥ ११ ॥ पुत्रा मे बहवो देहि भवेयुः कुलपावनाः ॥

समर्पण और भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ । हे मद्रराज ! हे अश्वपते ! तुम मुझ से इच्छित वर को कहो ॥ १० ॥ तुमने धर्म के विषय में किसी तरह कुछ भी प्रमाद नहीं किया । राजा अश्वपति बोले कि हे देवि ! मैंने धर्मप्राप्ति की इच्छा से अपत्य के लिये सम किया है ॥ ११ ॥ आप मुझे बहुत पुत्र दें और वे पुत्र कुल को पवित्र करने वाले हों । हे देवि !

यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे इस कामना को चाहता हूँ ॥ १२ ॥ हे देवि ! ब्राह्मणों ने मुझ से कहा है कि सन्तान होना श्रेष्ठ धर्म है । सावित्री बोली कि हे राजन् ! मैंने पूर्व में ही तुम्हारे इस अभिप्राय को जानकर पुत्र के लिये ब्रह्मा से कहा । हे सौम्य ! ब्रह्मा के प्रसाद से तेजस्विनी कन्या शीघ्र ही तुमको होगी । हे राजन् ! अब इस विषय में तुम मुझ से कुछ भी न कहना ॥ १३—१५ ॥ ब्रह्मा की आज्ञा से प्रसन्न होकर मैं तुमसे यह कहती हूँ ।

तुष्टासि यदि मे देवि काममेनं वृणोम्यहम् ॥ १२ ॥ सन्तानं हि परो धर्म इत्याहुर्मा द्विजातयः ॥ सावित्र्युवाच ॥ पूर्वमेव मया राजन् अभिप्रायमिमं तव ॥ १३ ॥ ज्ञात्वा पुत्रार्थमुक्तो वै भगवांस्ते पितामहः ॥ प्रसादाच्चैव तस्मात्ते स्वयम्भूविहिताद्भुवि ॥ १४ ॥ कन्या तेजस्विनी सौम्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ उत्तरं च न मे किञ्चित् व्याहर्तव्यं कथञ्चन ॥ १५ ॥ पितामहनिसर्गेण तुष्टा ह्येतद्ब्रवीमि ते ॥ राजोवाच ॥ तत्तथेति प्रतिज्ञाय सवित्र्या वचनं नृपः ॥ १६ ॥ प्रसादयामास पुनः क्षिप्रमेतद्भविष्यति ॥ अन्तर्हितायां सावित्र्यां जगाम स्वगृहं पुनः ॥ १७ ॥ स्वं राज्यं प्राप्य

सावित्री के वचन को सुनकर राजा अश्वपति बोले कि हे देवि ! ब्रह्मा ने जो कुछ कहा है वह मुझे स्वीकार है, यह कहकर सावित्री को पुनः प्रसन्न किया । तब सावित्री देवी ने कहा कि हे राजन् ! यह शीघ्र होगा, कह कर सावित्री अन्तर्हित हो गई । राजा अश्वपति पुनः अपने घर आया ॥ १६—१७ ॥ और राज्यासन पर बैठकर प्रसन्न मन से

धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। कुछ समय बीतने के बाद व्रत मे तत्पर राजा अश्वपति ने ॥ १८ ॥ अपनी धर्मचारिणी ज्येष्ठ महिषी में गर्भाधान किया। हे भरतर्षभ! उस राजपुत्री मे गर्भ क्रमशः आकाश में शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा। प्रसवकाल के आने पर राजमहिषी ने कमललोचना कन्या को पैदा किया॥१९--२०॥ राजा अश्वपति ने उस कन्या का जातकर्मादि सब संस्कार किया और सावित्री ने प्रेम से इसका प्रदान किया तथा

स प्रीतः प्रजाः धर्मेण पालयन् ॥ कस्मिंश्चित्तु गते काले स राजा नियतव्रतः ॥ १८ ॥ ज्येष्ठायां धर्मचारिण्यां महिष्यां गर्भमादधे ॥ राजपुत्र्यां ततो गृह्य प्रलम्ब्य भरतर्षभ ॥ १९ ॥ व्यवर्धत यथा शुक्ले तारापतिरिवाम्बरे ॥ प्राप्ते काले तु सुषुवे कन्यां राजीवलोचनाम् ॥ २० ॥ क्रियाश्च तस्या मुदितश्चक्रे स नृपतिस्तदा ॥ सावित्र्या प्रीतया दत्ता सावित्र्याहुतया तथा ॥ २१ ॥ सावित्रीत्येव नामास्याश्चक्रुर्विप्रास्तथा पिता ॥ सा विग्रहवती च श्रीर्व्यवर्धत नृपात्मजा ॥ २२ ॥ कालेनापि च सा कन्या यौवनस्था बभूव ह ॥ स तां सुमध्यां सुश्रोणीं प्रतिमां काञ्चनीमिव॥२३॥

सावित्री की एक लक्ष आहुति करने से प्राप्त हुई ॥ २१ ॥ इसलिये उस कन्या का ब्राह्मणों ने तथा राजा अश्वपति ने सावित्री नाम रखा। वह राजकन्या शरीरधारी लक्ष्मी के समान बढ़ने लगी ॥ २२ ॥ समय पाकर जब वह कन्या युवती हुई तब उस सुमध्यमा, सुश्रोणी को सुवर्णप्रतिमा के समान देख कर ॥ २३ ॥ राजा को यह देवकन्या मिली

है, यह लोगों ने निश्चय किया। उस कमलपत्र के समान नेत्रवाली कन्या को स्वतेज से जलती हुई अग्नि के समान तेजस्विनी देखकर ॥ २४ ॥ उसके तेज से बाधित होकर उसे किसी ने नहीं वरा। तदनन्तर कन्या ने उपवास कर शिर से स्नान किया और देवता के समीप जाकर ॥ २५ ॥ विधिवत् अग्नि में आहुति दिया, पर्व में ब्राह्मणों से प्रवचन कराया और प्रसन्नचेता उन महात्मा ब्राह्मणों का पूजन किया ॥ २६ ॥ तदनन्तर लक्ष्मी के समान रूपवती

प्राप्तेयं देवकन्येति दृष्ट्वा संमेनिरे जनाः ॥ तां तु पद्मपलाशाक्षीं ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥ २४ ॥
न कश्चिद्वरयामास तेजसा प्रतिबाधितः ॥ अथोपोष्य शिरःस्नाता देवतामभिगम्य सा ॥ २५ ॥
हुत्वाऽग्निं विधिवद्विप्रान् वाचयामास पर्वणि ॥ ततः सुमनसः सा वै प्रतिपूज्य महात्मनः ॥२६॥
पितुः सकाशमगमद्देवं श्रीरिव रूपिणी ॥ साऽभिवाद्य पितुः पादौ शेषं सर्वं न्यवेदयत् ॥ २७ ॥
कृताञ्जलिर्वरारोहा नृपतेः पार्श्वतः स्थिता ॥ यौवनस्थां तु तां दृष्ट्वा स्वसुतां देवरूपिणीम्
॥ २८ ॥ अयाच्यमानां च वरैर्नृपतिर्दुःखितोऽभवत् ॥ राजोवाच ॥ पुत्रि प्रदानकालस्ते न

वह राजकन्या पिता के पास गई और पिता के चरणों को अभिवादन कर शेष सब समाचार कहा ॥ २७ ॥ वह वरारोहा राजकन्या हाथ जोड़कर राजा के पास खड़ी हो गई। देवरूपिणी उस अपनी कन्या को युवावस्था में देखकर ॥ २८ ॥ जिस कन्या को कोई वर नहीं माँग रहा है उसे देखकर राजा अश्वपति दुःखी हो गया और अपनी

कन्या से बोला कि हे पुत्रि ! यह तुम्हारे प्रदान (दान) का समय है परन्तु तुमको कोई माँगता नहीं है ॥ २६ ॥
इस लिये तुम स्वयं अपने गुणों के समान पति का खोज करो और जो प्रसिद्ध पुरुष हो उसको मुझसे कहो ॥ ३० ॥
विचार कर हम तुम्हारा प्रदान करेंगे। तुम जैसा पति चाहती हो वैसा वरो। ब्राह्मणों से पढ़ा जाता हुआ
इस तरह का वर धर्मशास्त्रों मे सुना है ॥ ३१ ॥ हे कन्याणि ! मेरे वचन को सुनकर वैसा तुम भी करो। समय में

याचयति कश्चन ॥ २९ ॥ स्वयमन्विष्य भर्तारं गुणैः सदृशमात्मनः ॥ प्रथितः पुरुषो यश्च
संनिवेद्य त्वया मम ॥ ३० ॥ विचार्योऽहं प्रदास्यामि वरय त्वं यथेप्स्यसि ॥ श्रुतं हि धर्मशास्त्रेषु
पठ्यमानं द्विजातिभिः ॥ ३१ ॥ तथा त्वमपि कल्याणि गदतो मे वचः शृणु ॥ अप्रदाता पिता
वाच्यो वाच्यश्चानुनयन् पतिः ॥ ३२ ॥ गते भर्तरि पुत्रश्च वाच्यो मातुररक्षिता ॥ इदमेव वचः
श्रुत्वा भर्तुरन्वेषणे चर ॥ ३३ ॥ देवतानाममान्योऽहं न भवेयं तथा कुरु ॥ स्कन्द उवाच ॥

विवाह न करने पर पिता को कन्या कहे कि मेरा विवाह कर दीजिये और पति से कुछ कहना हो तो नम्रता पूर्वक
(प्रार्थना पूर्वक) कहे ॥ ३२ ॥ तथा पति के न रहने पर और माता से अरक्षित होने पर पुत्र से कहे। इस बात को
सुनकर तुम पति के अन्वेषण मे जाओ ॥ ३३ ॥ जिससे हम देवताओं के निगाह मे निन्दनीय न हो जांय वैसा तुम
करो। स्कन्दजी बोले कि हे ऋषि लोग ! इस तरह राजा अश्वपति ने कन्या और वृद्ध राजमन्त्रियों से हित वचन

कहा ॥ ३४ ॥ और राजकन्या के साथ अनुगमन के लिये मन्त्रियो को आज्ञा दी। तदनन्तर तपस्विनी वह राजकन्या लज्जित होकर पिता के चरणों को प्रणाम कर ॥ ३५ ॥ विना विचार किये पिता की आज्ञा मानकर रथ पर सवार होकर वृद्ध मन्त्रियों के साथ घर से पति के खोज मे चली ॥ ३६ ॥ वह राजकन्या राजर्षियो के सुन्दर तपोवन को गई, वहां पर माननीय तपोवृद्ध लोगों के चरणों को प्रणाम कर ॥ ३७ ॥ क्रम से समस्त वनों को गई,

एवमुक्त्वा हिततरं तथा वृद्धांश्च मन्त्रिणः ॥ ३४ ॥ व्यादिदेशानुयातांश्च गम्यतां चेत्यचोदयत् ॥ साऽभिवाद्य पितुः पादौ व्रीडितेव तपस्विनी ॥ ३५ ॥ पितुर्वचनमाज्ञाय निर्जगामाविचारिता ॥ सा हि रथमवस्थाय स्थविरैः सचिवैर्वृता ॥ ३६ ॥ तपोवनानि रम्याणि राजर्षीणां जगाम ह ॥ मान्यानां तत्र वृद्धानां कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥ ३७ ॥ वनानि क्रमशस्तानि सर्वाण्येवाभिगच्छति ॥ एवं सर्वेषु तीर्थेषु वनोत्सर्ग नृपात्मज ॥ ३८ ॥ कुर्वन्ती द्विजमुख्यानां तं तं देशं जगाम ह ॥ ३९ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

हे नृपात्मज ! इस तरह वह समस्त तीर्थों मे भी गई ॥ ३८ ॥ और जो ब्राह्मण-श्रेष्ठो का वन था उसका त्याग कर समस्त देशों को गई ॥ ३९ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

स्कन्दजी ऋषियों से बोले और व्यास जी राजा युधिष्ठिर से बोले कि हे भारत ! तदनन्तर मद्रराज अश्वपति और नारद ऋषि का समागम हुआ । कथा के योग से राजसभा में नारद जी बैठे थे ॥ १ ॥ इसी समय राजकन्या सावित्री मन्त्रियो के साथ समस्त तीर्थ आश्रमो में जाकर पुनः अपने गृह को आई ॥ २ ॥ और नारद ऋषि के साथ पिता को स्थित देखकर सावित्री ने शिर से दोनों के चरणों का अभिवादन किया ॥ ३ ॥ नारदजो ने राजा से कहा

स्कन्द उवाच ॥ अथ मद्राधिपो राजा नारदेन समागतः ॥ उपविष्टः सभामध्ये कथायोगेन भारत ॥ १ ॥ ततोऽभिगम्य तीर्थानि सर्वाण्येवाश्रमाणि च ॥ आजगाम पुनर्वेश्म सावित्री मन्त्रिभिः सह ॥ २ ॥ नारदेन समासीनं दृष्ट्वा सा पितरं शुभा ॥ उभयोरेव शिरसा कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ क्व गताऽभूत्सुतेयं कुतश्चैवागता नृप ॥ किमर्थं युवतीं भर्त्रे नैव तां संप्रयच्छसि ॥४॥ अश्वपतिरुवाच ॥ कार्येण खल्वनेनेयं प्रेषिता सैव चागता ॥ तत्तस्याः शृणु देवर्षे भर्ता वै योऽनया वृतः ॥ ५ ॥ सा ब्रूहि विस्तरेणेति पित्रा सञ्चोदिता शुभा ॥ दैवतस्यैव वचनं

कि हे नृप ! यह आपकी कन्या कहां गई थी ? और कहां से आई है ? और आप इस युवती को पति के लिये क्यों नहीं देते ? ॥ ४ ॥ राजा अश्वपति बोले कि हे देवर्षे ! नारद जी ! इसी कार्य के लिये इसको भेजा था वही यह कार्य करके आई है । सो आप इसके उस कार्य को सुनिये, इसने जिसको पति वरा है ॥ ५ ॥ जब पिता ने विस्तार से

कहने के लिये कहा तब वह कन्या दव (भाग्य) वचन का अवलम्बन कर बोली ॥ ६ ॥ सावित्री बोली कि शाल्व देश में धर्मात्मा द्युमत्सेन नामक क्षत्रिय राजा हुआ, वह राजा दैववश अन्धा हो गया ॥ ७ ॥ उस बालपुत्र से युक्त नेत्रहीन बुद्धिमान् उस राजा द्युमत्सेन के राज्य को छिद्र मिलने पर पूर्व के वैरी सामन्त (स्वदेश समीपवर्ती राजा) ने हरण कर लिया ॥ ८ ॥ तब वह द्युमत्सेन अपने बालपुत्र और स्त्री के साथ वन को चला गया, और वह महाव्रती

प्रतिगृह्येदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ सावित्र्युवाच ॥ आसीच्छाल्वेषु धर्मात्मा क्षत्रियः पृथिवीपतिः ॥ द्युमत्सेन इति ख्यातो दैवादन्धो बभूव ह ॥ ७ ॥ विनष्टचक्षुषस्तस्य बालपुत्रस्य धीमतः ॥ सामन्तेन हृतं राज्यं छिद्रेऽस्मिन् पूर्ववैरिणा ॥ ८ ॥ स बालवत्सया सार्धं भार्यया प्रस्थितो वनम् ॥ महारण्यं गतश्चापि तपस्तेपे महाव्रतः ॥ ९ ॥ तस्य पुत्रः पुरे जातः संवृद्धस्तु तपोवने ॥ सत्यवानिति विख्यातो भर्ता मे मनसा वृतः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ अहो बत महत्पापं सावित्र्या बत ते कृतम् ॥ अजानन्त्या वृतो भर्ता सत्यवान् गुणसम्मितः ॥ ११ ॥ सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यं माता

महारण्य में जाकर तप करने लगा ॥ ९ ॥ उसका लड़का पुर (नगर) मे जन्मा था और तपोवन में जाकर बढा है तथा सत्यवान् नाम से विख्यात है उसको मैंने मन से वरा है ॥ १० ॥ नारदजी बोले कि अहो ! महान् खेद है, इस सावित्री ने महान् पाप किया, इसने विना समझे गुणसम्पन्न सत्यवान् को पतिरूप में वर लिया है ॥ ११ ॥ इस

बालक का पिता सत्य बोलता है और माता सत्य बोलती है इस लिये ब्राह्मणो ने इसका नाम सत्यवान् रखा है ॥१२॥ इस बालक को अश्व प्रिय है और मिट्टी का अश्व (घोड़ा) बनाता हैं तथा चित्र मे भी अश्व को लिखता है इस लिये इसका चित्राश्व भी नाम है ॥१३॥ राजा अश्वपति बोले कि हे नारदजी ! वह पितृवत्सल राजपुत्र सत्यवान् इस समय

प्रभाषते ॥ ततोऽस्य ब्राह्मणाश्चक्रुर्नामैतत्सत्यवानिति ॥ १२ ॥ बालस्याश्वाः प्रिया यस्य करोत्यश्वांश्च मृन्मयान् ॥ चित्रेऽपि विलिखत्यश्वांश्चित्राश्व इति चोच्यते ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ अपीदानीं स तेजस्वी बुद्धिमान् वा नृपात्मजः ॥ क्षमावानपि यः शूरः सत्यवान् पितृवत्सलः ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ विवस्वानिव तेजस्वी बृहस्पतिसमो मतौ ॥ महेन्द्र इव शूरश्च वसुधेव क्षमान्वितः ॥ १५ ॥ अपि राजात्मजो दाता ब्रह्मण्यश्चापि वीर्यवान् ॥ रूपवानप्युदारो वा ह्यथवा प्रियदर्शनः ॥ १६ ॥ साम्प्रतं रन्तिदेवस्य स्वशक्त्या दानतः समः ॥ ब्रह्मण्यः सत्यवादी च

तेजस्वी, बुद्धिमान्, शूर है क्या ? ॥ १४ ॥ नारद जी बोले कि हे राजन् ! वह सूर्य के समान तेजस्वी, बृहस्पति के समान बुद्धिमान्, इन्द्र के समान शूर और पृथिवी के समान क्षमाशील है ॥ १५ ॥ तथा वह राजपुत्र दाता, ब्रह्मण्य, वीर्यवान्, रूपवान्, उदार और प्रिय दर्शन है ॥ १६ ॥ इस समय वह दान मे अपनी शक्ति से

राजा रन्तिदेव के समान, उशीनर पुत्र शिवि के समान ब्रह्मण्य और सत्यवादी है ॥ १७ ॥ वह बली द्युमत्सेन का पुत्र ययाति के समान उदार, चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन, रूप में अश्विनीकुमार के समान है ॥ १८ ॥ वह दान्त (तपःक्लेश का सहन शील), मृदु (सुकुमार), शूर, सिद्ध, जितेन्द्रिय और तप शील का निधि है ॥ १९ ॥ अश्वपति बोले कि हे नारदजी! आप उस बालक को समस्त गुणों से युक्त कहते हैं। यदि उसमें कोई दोष हैं

शिविरौशीनरो यथा ॥ १७ ॥ ययातिरिव चोदारः सोमवत् प्रियदर्शनः ॥ रूपेणाप्रतिमोऽश्विभ्यां द्युमत्सेनसुतो बली ॥ १८ ॥ स दान्तः स मृदुः शूरः स सिद्धः स जितेन्द्रियः ॥ संक्षेपस्तपसो वृद्धैः शीलवृद्धैश्च कथ्यते ॥ १९ ॥ अश्वपतिरुवाच ॥ गुणैरुपेतं सर्वैस्तं भगवन् प्रब्रवीषि मे ॥ दोषानपि च मे ब्रूहि यदि सन्ति च कानपि ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ एक एवास्य दोषोऽस्ति गुणानाक्रम्य तिष्ठति ॥ स च दोषः प्रयत्नेन अशक्यमनिर्वर्तितुम् ॥ २१ ॥ एको दोषो न चान्योऽस्ति सोऽद्य प्रभृति सत्यवान् ॥ संवत्सरेण क्षीणायुर्देहत्यागं करिष्यति ॥ २२ ॥ राजोवाच ॥

तो उनको भी मुझसे कहिये ॥ २० ॥ नारदजी बोले हे राजन्! उस बालक में समस्त गुणों को दबाकर एक ही दोष है, और वह दोष प्रयत्न से यावत् शक्ति दूर करने में अशक्य है ॥२१॥ एक ही दोष है, दूसरा कोई दोष नहीं है, सो वह क्षीणायु सत्यवान् आज से एक वर्ष बाद शरीर त्याग करेगा ॥ २२ ॥ राजा अश्वपति ने कहा कि

हे सावित्रि ! हे शोभने ! इधर आओ, और दूसरे को वरने के निमित्त जाओ, उस सत्यवान् में समस्त गुणों को दबाकर एक महान् दोष है ॥ २३ ॥ जैसा कि देवसम्मत भगवान् नारदजी ने मुझसे कहा है कि यह अल्पायु बालक एक वर्ष में देहत्याग करेगा ॥ २४ ॥ सावित्री बोली कि हे पिताजी ! राजा लोग एक बार बोलते हैं और पण्डित लोग एक बार बोलते है, तथा कन्या एक बार दी जाती है, ये तीनों कार्य एक बार होते है ॥ २५ ॥ दीर्घायु अथवा

एहि सावित्रि गच्छ त्वमन्यं वरय शोभने ॥ तस्य दोषो महानेको गुणानाक्रम्य तिष्ठति ॥ २३ ॥
यथा मां भगवानाह नारदो देवसम्मतः ॥ संवत्सरेण सोऽल्पायुर्देहत्यागं करिष्यति ॥ २४ ॥
सावित्र्युवाच ॥ सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः ॥ सकृत् कन्या प्रदीयेत त्रीण्येतानि
सकृत् सकृत् ॥ २५ ॥ दीर्घायुरथवाऽल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा ॥ सकृद्वृतो मया भर्ता
द्वितीयं न वृणोम्यहम् ॥ २६ ॥ मनसा निश्चितं कार्यं ततो वाचाऽभिधीयते ॥ कर्मणा क्रियते
पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः ॥ २७ ॥ इति मत्वा त्वया तात यत्कर्तव्यं वदस्व तत् ॥ नारद

अल्पायु हों, सगुण अथवा निर्गुण हों, मैंने एक बार पति को वर लिया अब दूसरा पति न वरूँगी ॥ २६ ॥ मन से कार्य निश्चित हो जाने पर वचन से कहा जाता है और बाद कर्म से किया जाता है, उसमे प्रमाणभूत मेरा मन है ॥ २७ ॥ हे तात ! इस मेरे मानस विचार का ध्यान रखकर जो कर्तव्य हो उसे आप कहिये । नारदजी बोले कि

हे नरश्रेष्ठ ! सत्यवान् के विषय में सावित्री का विचार स्थिर है ॥ २८ ॥ जिसकी बुद्धि दूसरे पुरुष में निश्चय रूप से नहीं जाती है उसे किसी तरह इस धर्म मे पृथक् नहीं कर सकते ॥ २९ ॥ इस लिये आपकी कन्या का प्रदान (विवाह सम्बन्ध) कर देना ही मुझे अच्छा मालूम होता है । राजा अश्वपति बोले कि हे नारदजी ! बिना विचार किये मैंने वचन कहे है और आपके सत्य वचन को ॥ ३० ॥ मै करूँगा, क्योंकि आप मेरे गुरु हैं । नारदजी बोले

उवाच ॥ स्थिरा बुद्धिर्नरश्रेष्ठ सावित्र्याः सत्यवान् प्रति ॥ २८ ॥ नैषा वारयितुं शक्या धर्माद्-स्मात् कथञ्चन ॥ नान्यस्मिन् पुरुषे यस्या मतिर्भवति निश्चितम् ॥ २९ ॥ प्रदानमेव तस्मान्मे रोचते दुहितुस्तव ॥ राजोवाच ॥ अविचार्य मया चोक्तं तथ्यं भगवतो वचः ॥ ३० ॥ करिष्यामि तदेवाहं गुरुर्हि भगवान् मम ॥ नारद उवाच ॥ अविघ्नमस्तु सावित्र्याः प्रदानं दुहितुस्तव ॥ ३१ ॥ एवमुक्त्वा समुत्थाय नारदस्त्रिदिवं गतः ॥ राजापि दुहितुः सर्वं वैवाहिकमथाकरोत् ॥ ॥ ३२ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

कि हे राजन् ! आपकी पुत्री सावित्री का प्रदान (विवाह सम्बन्ध) विघ्न रहित हो ॥ ३१ ॥ यह कहकर नारदजी उठे और स्वर्ग लोक को चले गये । तदनन्तर राजा अश्वपति ने भी कन्या का वैवाहिक सब कार्य किया ॥ ३२ ॥

इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

स्कन्दजी बोले कि हे ऋषि लोग ! नारदजी के चले जाने पर सब वृद्ध, द्विज, ऋत्विज, पुरोहित वर्ग को बुलाकर पुण्य तिथि में कन्या के साथ राजा द्युमत्सेन के आश्रम मे जाने के निमित्त यात्रा किया ॥१॥ हे नृप ! राजा अश्वपति ने राजा द्युमत्सेन के मेधारण्य नामक आश्रम मे जाकर शाल वृक्ष के सहारे स्थित महात्मा द्युमत्सेन को देखा ॥ २ ॥ कुशा के आसन पर स्थित, नेत्रहीन राजा को देखकर अश्वपति ने राजर्षि द्युमत्सेन का यथाविधि

स्कन्द उवाच ॥ ततो वृद्धान् द्विजान् सर्वानृत्विजः सपुरोहितान् ॥ समाहूय तिथौ पुण्ये प्रययौ कन्यया सह ॥ १ ॥ मेधारण्यं समागत्य द्युमत्सेनाश्रमं नृप ॥ तत्रापश्यन्महात्मानं शाल-वृक्षसमाश्रितम् ॥ २ ॥ कौश्यां बृस्यां समासीनं चक्षुर्हीनं नृपं तदा ॥ स राजा तस्य राजर्षेः कृत्वा पूजां यथाविधि ॥ ३ ॥ वाचा सुनियतो भूत्वा कृतं स्वात्मनिवेदनम् ॥ तस्य दर्भासनं चैव दत्वा वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥ तस्य सर्वमभिप्रायमिति कर्तव्यता तदा ॥ ५ ॥ सत्यवन्तं समुद्दिश्य सर्वमेव न्यवेदयत् ॥ सावित्री नाम राजर्षे कन्येयं मम शोभना ॥ ६ ॥ तां स्वधर्मेण धर्मज्ञ

पूजन किया ॥ ३ ॥ और नियमित वचनो से स्वात्मा का निवेदन किया, और उनको कुशासन देकर वचन बोले ॥ ४ ॥ उनका जो कुछ अभिप्राय और उस समय जो कुछ कर्तव्य था उसको समझकर ॥ ५ ॥ सत्यवान् के विषय में सभी बातें कह दीं । और बोले कि हे राजर्षे ! मेरी शोभना सावित्री नाम की कन्या है ॥६॥ हे धर्मज्ञ ! आप

उसको स्वधर्म से पतोहू के रूप में ग्रहण करें ॥ ७ ॥राजा द्युमत्सेन बोले हे राजन्! हम लोग राज्य से च्युत है और वनवास का आश्रय लेकर तपस्वियों का धर्म सेवन करते हैं। इस वनवास के आश्रम मे रहने के अयोग्य आपकी कन्या इस शीत को किस तरह सहन करेगी ? ॥ ८ ॥ राजा अश्वपति बोले कि हे राजसत्तम! इसने जानकर पति वरा है, हे मानद! इस आपके पुत्र के साथ संवास (विवाह सम्बन्ध) ॥ ९ ॥ हे महाराज! स्वर्ग के समान

स्नुषार्थं त्वं गृहाण मे ॥ ७ ॥ द्युमत्सेन उवाच ॥ च्युताः स्वराज्यात् वनवासमाश्रिताश्चराम धर्मं नियतास्तपस्विनाम् ॥ कथं त्वनर्हा वनवासमाश्रमे सहिष्यते शीतमिदं सुता तव ॥ ८ ॥ अश्वपतिरुवाच ॥ अनया च वृतो भर्ता जानन्त्या राजसत्तम ॥ अनेन सह संवासस्तव पुत्रेण मानद ॥ ९ ॥ स्वर्गतुल्यो महाराज भविष्यति न संशयः ॥ आशां नार्हसि मे हन्तुं सौहृदात् प्रणतस्य च ॥ १० ॥ अभितश्चागतं प्रेम्णा प्रत्याख्यातुं न चार्हसि ॥ अरूपोऽपि हि युक्तश्च त्वन्ममाहं तवापि च ॥ ११ ॥ स्नुषां प्रतीच्छ मे कन्यां भार्यार्थं भवतः सुतः ॥ १२ ॥ द्युमत्सेन

सुखदाई होगा, इसमें संशय नहीं है। हे राजन्! मैं सुहृदभाव से आपके शरण तैयार होकर आया हूँ मेरी आशा को नष्ट न करें ॥ १० ॥ सभी तरह प्रेम के साथ मैं आया हूँ, आप मे वचन का त्याग न करें। अयोग्य भी आपका पुत्र मुझे अभिमत है और इसी तरह अयोग्य भी मेरी कन्या आपको अभिमत हो ॥ ११ ॥ आप मेरी

कन्या को पुत्रवधू वनाने के निमित्त और आपका पुत्र उसे अपनी भार्या वनाने के निमित्त ग्रहण करें ॥ १२ ॥ राजा द्युमत्सेन बोले कि हे राजन्! मेरा आपके साथ संवन्ध करने का विचार पूर्व से ही था, परन्तु इस समय मैं राज्यहीन हूँ इस लिये मैंने अपना निश्चय आपसे कहा ॥ १३ ॥ उसके वाद दोनों राजाओं ने सभी आश्रमवासी द्विजों को एकत्रित कर विधिपूर्वक विवाह संस्कार किया ॥ १४ ॥ राजा अश्वपति वर के योग्य कन्या का मय

उवाच ॥ पूर्वमेवाभिलषितः संवन्धो मे त्वया सह ॥ साम्प्रतं भ्रष्टराज्योऽहमिति कृत्वा विचारितम् ॥ १३ ॥ ततः सर्वान् समानीय द्विजानाश्रमवासिनः ॥ यथाविधि समुद्वाहं कारयमासतुर्नृपौ ॥ १४ ॥ दत्वा चाश्वपतिः कन्यां वरार्हां सपरिच्छदाम् ॥ ययौ स्वकीयभवनं युक्तः परमया मुदा ॥ १५ ॥ सत्यवानपि भार्यां तां लब्ध्वा सर्वगुणान्विताम् ॥ मुमुदे साऽपि तं लब्ध्वा भर्तारं मनसेप्सितम् ॥ १६ ॥ गते पितरि सर्वाणि न्यस्तान्याभरणानि च ॥ जगृहे वल्कलान्येव वस्त्रं काषायमेव च ॥ १७ ॥ परिचर्यगुणैश्चैव प्रश्रयेण दमेन च ॥ सर्वकामक्रियाभिश्च सर्वेषां

सामग्री के दान कर परम हर्ष के साथ अपने घर को गये ॥ १५ ॥ सत्यवान् भी सर्वगुण सम्पन्ना उस भार्या को पाकर प्रसन्न हुआ तथा वह सावित्री इच्छित भर्ता को पाकर प्रसन्न हुई ॥ १६ ॥ और पिता के चले जाने पर सम्पूर्ण आभूषणों को उतार कर वल्कल के आभूषण और काषाय वस्त्र को धारण किया ॥१७॥ सावित्री ने अपने सेवागुण

प्रश्रय (नम्रता), दम, समस्त गृह कार्य कर्मों से सेवाकर सबों को प्रसन्न किया ॥ १८ ॥ इसी तरह उस आश्रम मे सदा निवास करने वाले सत् पुरुषों को प्रसन्न किया । और राजर्षि सत्यवान् भी उस पत्नी से प्रसन्न हुआ ॥ १६ ॥ तथा उस वन के एक भाग में इन्द्राणी के साथ इन्द्र के समान वह आनन्द करता था । हे ब्राह्मण लोग ! इस तरह कुछ

तुष्टिमावहत् ॥ १८ ॥ एवं तत्राश्रमे तेषां सदा निवसतां सताम् ॥ सत्यवानपि राजर्षिस्तया पत्न्याऽभिनन्दितः ॥ १६ ॥ क्रीडते तद्वनोद्देशे पौलोम्या मघवानिव ॥ कालेप्सुः पश्यतां कश्चिदतिक्रामत भो द्विजाः ॥ २० ॥ सावित्र्यास्तु शयानायास्तिष्ठन्त्याश्च दिवानिशम् ॥ नारदेन यदुक्तं तत् वाक्यं मनसि वर्तते ॥ २१ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

समय बीत गया ॥ २० ॥ परन्तु सावित्री के मन मे शयन, गमन आदि सभी समय में दिनरात नारद की बात बनी रहती थी ॥ २१ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

स्कन्दजी ऋषियों से बोले और व्यासजी राजा युधिष्ठिर से बोले कि हे नृप ! तदनन्तर बहुत समय बीत जाने पर नारद ऋषि का कहा हुआ वह समय आ गया ॥ १ ॥ हे राजन् ! नारद ऋषि ने जो कुछ कहा था वह उस सावित्री के हृदय मे निरन्तर बना रहता था और सावित्री प्रतिदिन समय की गणना किया करती थी ॥ २ ॥ बाद तीन रात्रि का व्रत आरम्भ कर दिनरात एक आसन से बैठ गई और चौथे दिन इस नियम की समाप्ति करूँगी, ऐसा निश्चय

स्कन्द उवाच ॥ ततः काले बहुतिथे व्यतिक्रान्ते कदाचन ॥ प्राप्तः स कालो यश्चैव नारदोक्तः पुरा नृप ॥ १ ॥ गणयन्त्याश्च सावित्र्या दिवसे दिवसे नृप ॥ यद्वाक्यं नारदेनोक्तं वर्तते हृदि नित्यशः ॥ २ ॥ व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रं स्थिराऽभवत् ॥ चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमिति सञ्चित्य भामिनी ॥ ३ ॥ तं श्रुत्वा नियमं दुःखं वध्वा दुःखान्वितो नृपः ॥ उत्थाय वाक्यं सावित्रीमब्रवीत् परमं स्वयम् ॥ ४ ॥ द्युमत्सेन उवाच ॥ अतितीव्रोऽयमारम्भस्त्वयाऽऽरब्धो नृपात्मजे ॥ ५ ॥ तिसृणां वसतीनां हि स्थानं परमदुश्चरम् ॥ ज्ञात्वा तद्दिवसं विप्र भर्तुर्निधन-

किया ॥ ३ ॥ राजा द्युमत्सेन अपनी पुत्रवधू का दुःख-साध्य नियम सुनकर दुखी हो गये, और उठकर स्वयं सावित्री से श्रेष्ठ वचन बोले ॥ ४ ॥ राजा द्युमत्सेन बोले कि हे राजपुत्रि ! तुमने यह अति कठिन नियम का आरम्भ किया है ॥ ५ ॥ स्कन्दजी ऋषियों से कहते हैं कि तीन दिन का समय बहुत दुश्चर (दुःख से विताने के योग्य) है, हे

विप्र ! उस दिवस को पति के मृत्यु का कारण जानकर ॥६॥ इसके बीच में उस मनस्विनी ने तीन दिन का नियम ग्रहण किया और चतुर्थ दिन हे मुने ! आज के दिन सत्यवान् मरेगा ॥७॥ इसी समय सत्यवान् कुठार और पिटक (पिटारी) लेकर वन के लिये चला, उस सत्यवान् को वन जाते देखकर सावित्री बोली ॥ ८ ॥ कि हे मानद ! आज मेरे कहने

कारणम् ॥ ६ ॥ अत्रान्तरे च नियमं त्रिदिनस्य मनस्विनी ॥ अस्मिन् दिने च मर्तव्यं तदा सत्यवता मुने ॥ ७ ॥ कुठारं संगृहीत्वा च पिटकं चैव सुव्रतः ॥ तं प्रस्थितं वने चैव सावित्री वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥ न गन्तव्यं वनं त्वद्य मम वाक्येन मानद ॥ अथवा गम्यते साधो मया सह वनं व्रज ॥ ९ ॥ संवत्सरं च सम्पूर्णमाश्रमेऽस्मिन् मम प्रभो ॥ १० ॥ सत्यवानुवाच ॥ नाहं स्वतन्त्रः सुश्रोणि पृच्छस्व पितरौ मम ॥ ताभ्यां प्रस्थापिता गच्छ मया सह शुचिस्मिते ॥११॥ एवमुक्ता तदा तेन भर्त्रा सा कमलेक्षणा ॥ श्वश्रूश्वशुरयोः पादावभिवाद्येदमब्रवीत् ॥१२॥

से आप वन को न जांय, अथवा हे साधो ! यदि आप जाना चाहते है तो मेरे साथ वन को चले ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! इस आश्रम में वास करते एक वर्ष पूर्ण हो गया ॥ १० ॥ सत्यवान् बोले कि हे सुश्रोणि ! मैं स्वतन्त्र नही हूँ, मेरे माता पिता से पूछो । हे शुचिस्मिते ! यदि वे लोग चलने को कहें तो मेरे साथ चलो ॥ ११ ॥ पति के ऐसा कहने

पर वह कमलनेत्रा सास श्वसुर के समीप गई और उनके चरणों को प्रणाम कर वचन बोली ॥ १२ ॥ कि मैं वन देखने के निमित्त जाना चाहती हूँ, आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये । और वह पतिव्रता बोली कि आप मुझे एक वर दीजिये ॥ १३ ॥ मेरा मन पति के साथ वन को जाने के लिये कह रहा है । सावित्री के वचन को सुनकर राजा द्युमत्सेन यह बात बोले ॥ १४ ॥ द्युमत्सेन ने कहा कि हे भद्रे ! हे सुव्रते ! तुमने व्रत किया है अब उस व्रत का

वनं द्रष्टुं गमिष्यामि आज्ञा मह्यं प्रदीयताम् ॥ उवाच वचनं साध्वी वरमेकं प्रयच्छथ ॥१३॥

भर्त्रा सह वनं गन्तुं मम त्वरयते मनः ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा द्युमत्सेनोऽब्रवीदिदम् ॥ १४ ॥

द्युमत्सेन उवाच॥ व्रतं कृतं त्वया भद्रे पारणां कुरु सुव्रते ॥ पारणान्ते भीरु ततो गन्तुं वाऽरण्य-

मर्हसि ॥ १५ ॥ सावित्र्युवाच ॥ नियमश्च कृतोऽस्माभीरात्रौ चन्द्रोदये सति ॥ जाते मया

प्रकर्तव्यं भोजनं तात मे शृणु ॥ १६ ॥ वनदर्शनकामास्मि भर्त्रा सह ममाद्य वै ॥ न मे तत्र

भवेद्ग्लानिर्भर्त्रा सह नराधिप ॥ १७ ॥ इत्युक्तस्तु तदा राजा द्युमत्सेनो महीपतिः ॥ यत्तेऽभि-

पारण करो । अथवा हे भीरु ! पारण के बाद तुम वन को जा सकती हो ॥ १५ ॥ सावित्री बोली कि हे तात ! मैंने रात्रि में चन्द्रोदय होने पर भोजन का नियम किया है, हे तात ! और मेरी बात सुनिये ॥१६॥ आज मै पति के साथ वन देखना चाहती हूँ, हे नराधिप ! पति के साथ मुझे वन में ग्लानि (कष्ट) न होगी ॥ १७ ॥ यह बात

सुनकर राजा द्युमत्सेन बोले कि हे पुत्रि ! हे सुमध्यमे ! जो कुछ तुम चाहती हो उसको तुम करो ॥ १८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! हे प्रभो ! सावित्री सास श्वशुर को प्रणाम कर सत्यवान् के साथ वन को गई ॥ १९ ॥ और समय समय पर वह मनस्विनी पति को देखा करती थी, और विकसित पुष्प वाले वृक्ष तथा फलित वृक्षों से व्याप्त वन को देखती थी ॥ २० ॥ उस वन के वृक्ष तथा मृग विशेष के नामों को पूछती हुई और मृगसमूह को देखती हुई वह सावित्री

लषितं पुत्रि तत्कुरुष्व सुमध्यमे ॥ १८ ॥ नमस्कृत्वा तु सावित्री श्वश्रूश्वशुरयोरपि ॥ सा गता मुनिशार्दूल तेन सत्यवता प्रभो ॥ १९ ॥ आलोकयन्ती भर्तारं काले काले मनस्विनी ॥ वनं च फलितं सर्वं पुष्पितद्रुमसंकुलम् ॥ २० ॥ द्रुमाणां चैव नामानि मृगाणां चैव भामिनी ॥ पश्यन्ती मृगयूथानि हृदयेन प्रवेपती ॥ २१ ॥ तत्र गत्वा सत्यवान् वै फलान्यादाय सत्वरः ॥ काष्ठानि च समादाय बबन्धे भारकं तदा ॥ २२ ॥ पिटकं पूरयामास कृत्वा वृक्षावलम्बनम् ॥ वटवृक्षस्य सा साध्वी उपविष्टा महासती ॥ २३ ॥ काष्ठान् पाटयतस्तस्य जाता शिरसि वेदना

हृदय से कांप रही थी ॥ २१ ॥ उस वन मे जाकर सत्यवान् ने शीघ्र फलों को लेकर और काष्ठ को भी लिया और एक भार (बोझा) बांध कर तैयार किया ॥ २२ ॥ वह साध्वी पतिव्रता वट वृक्ष के समीप बैठकर पिटक (पेटारी) को फलों से पूर्ण करने लगी ॥ २३ ॥ और सत्यवान् उन काष्ठों को कुठार से फाडने लगा, इस समय सत्यवान् के

शिर मे वेदना होने लगी ॥ २४ ॥ सत्यवान् सावित्री से बोला कि हे भद्रे ! शूल के समान काटों से मेरा शिर फट रहा है, हे सुश्रोणि ! हे सुव्रते ! मैं तुम्हारे गोद मे सूतना चाहता हूँ ॥ २५ ॥ विशालाची मनस्विनी सत्यवान् की मृत्यु का समय उपस्थित समझ कर वह भामिनी उसी स्थान मे बैठ गई ॥ २६ ॥ सत्यवान् भी सावित्री के गोद मे

॥ २४ ॥ सत्यवानुवाच ॥ कण्टकैर्भिद्यते भद्रे शिरो मे शूलसम्मितैः ॥ उत्सङ्गे तव सुश्रोणि स्वप्तुमिच्छामि सुव्रते ॥ २५ ॥ अभिज्ञाय विशालाक्षी तस्य मृत्योर्मनस्विनी ॥ प्राप्तं कालं मन्यमाना तस्थौ तत्रैव भामिनी ॥ २६ ॥ सत्यवानपि सुप्तस्तु कृत्वोत्सङ्गे शिरस्तथा ॥ तावत्तत्र समागच्छत् पुरुषः कृष्णपिङ्गलः ॥ २७ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

शिर रखकर सो गया, तबतक वहाँ पर एक कृष्णपिङ्गल वर्ण का पुरुष आया ॥ २७ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥



ऋपि लोग बोले कि हे स्कन्द जी ! दुःख शोक भय से आक्रान्त, एकाकी वन मे स्थित उस असहाय पतिव्रता मनस्विनी ने क्या किया ? ॥ १ ॥ स्कन्द जी बोले कि हे ऋषि लोग ! सावित्री को पतिव्रता जानकर धर्मराज स्वयं आये, उस पुरुप को शरीर से जाज्वल्यमान देखकर वह भामिनी ॥ २ ॥ वाक्यविदुषी वचन बोली कि हे पुरुप ! लोकभयंकर तुम कौन हो ? । यमराज बोले कि वरारोहे ! हे मनस्विनि । तुम्हारा पति क्षीणायु है ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः ॥ किमकारि ततः साध्वी एकाकी वनसंस्थिता ॥ दुःखशोकभयाक्रान्ता असहाया मनस्विनी ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ज्ञात्वा सतीं स धर्मस्तु आगतः स्वयमेव हि ॥ जाज्वल्यमानं वपुषा ददर्शाथ च भामिनी ॥ २ ॥ उवाच वाक्यं वाक्यज्ञा कस्त्वं लोकभयङ्करः ॥ यम उवाच ॥ क्षीणायुस्तु वरारोहे भर्ता तव मनस्विनि ॥ ३ ॥ देवि दुर्विषहं तेजः सोढुं शक्यं न ते शुभे ॥ इति ज्ञात्वा महाभागे स्वयमागमनं मम ॥ ४ ॥ इत्युक्त्वा तां वरारोहां तस्य देहान्महात्मनः ॥ अंगुष्ठमात्रं पुरुषं बद्ध्वा पाशेन सुस्थिरम् ॥ ५ ॥ विचकर्ष ततो वेगाद्गृहीत्वा

हे देवि ! हे शुभे ! तुम्हारा दुर्विपह तेज सहन करने योग्य नहीं है, हे महाभागे ! यह जान कर मैं यहां स्वयं आया हूँ ॥ ४ ॥ यह उस वरारोहा सावित्री से कहकर उस महात्मा के देह से अङ्गुष्ठमात्र पुरुप को पाश से सुस्थिर बांध कर ॥ ५ ॥ वेग से खींचा और उसे लेकर यमराज अपनी यमपुरी को चले, तदनन्तर उस पति के पीछे सावित्री भी

चली ॥ ६ ॥ यमराज बोले कि हे महाभागे ! तुम बहुत दूरतक चली आई हो अब लौट जाओ, और अपने गृह जाकर शीघ्र और्ध्वदेहिक (पारलौकिक) क्रिया को करो ॥ ७ ॥ इस तरह यमराज के कहने पर उस समय सावित्री यमराज से बोली कि हे मानद ! आपके समीप मुझे श्रम नहीं है और न मुझे ग्लानि है ॥ ८ ॥ हे सुरेश्वर ! विशेष

प्रस्थितः पुरीम् ॥ सावित्री तु ततः पश्चादनुयाति स्म तं पतिम् ॥ ६ ॥ यम उवाच ॥ निवर्तस्व महाभागे त्वं दूरं समुपागता ॥ गत्वा स्वभवनं शीघ्रं कुरु चैवोर्ध्वदेहिकम् ॥ ७ ॥ एवमुक्ता तु सा तेन प्रत्युवाच यमं तदा ॥ सावित्र्युवाच ॥ न श्रमो न च मे ग्लानिः सकाशे तव मानद ॥ ८ ॥ विशेषतश्च भर्तुर्मे कुतो ग्लानिः सुरेश्वर ॥ धर्मेण त्वं पालयसे धर्मेण त्वं विवर्धसे ॥ ९ ॥ नाफलं दर्शनं तेऽद्य सतामुक्तं कदाचन ॥ आहुः साप्तपदीं मैत्रीमिति वेदविदो विदुः ॥ १० ॥ सन्तुष्टस्तेन वाक्येन धर्मराजो यमस्तदा ॥ वराणामीश्वरो दाता वरं तस्यै दिदेश

कर तो पति के समीप मुझे ग्लानि क्यों होगी ? आप धर्म से पालन करते हैं, धर्म से बढ़ाते हैं ॥ ९ ॥ आज आपका दर्शन निष्फल नहीं है, और सत्पुरुषों कहना है कि आपका दर्शन कभी भी निष्फल नहीं होता । तथा वेद के ज्ञाता लोग कहते हैं कि कि मैत्री साप्तपदी (सात पग साथ चलने से) होती है ॥ १० ॥ उस समय सावित्री के वचन से

धर्मराज प्रसन्न होगये और वरों के मालिक तथा वरों के दाता यमराज ने उस सावित्री को वर दिया ॥ ११ ॥
सावित्री ने यमराज से सास श्वशुर के लिये नेत्रप्राप्ति राज्यप्राप्ति रूप वर मांगा और पिता के लिये तथा अपने
लिये सौ सौ (१००) पुत्र का होना रूप वर मांगा ॥१२॥ तथा यमराज की आज्ञा से पति का जीवन रूप वर भी
मांगा । तदनन्तर सुव्रता सावित्री ने धर्मराज की प्रदक्षिणा की ॥ १३ ॥ सावित्री के सभी वरों को देकर यमराज

ह ॥ ११ ॥ चक्षुःप्राप्तिञ्च सा वव्रे श्वश्रूश्वशुरयोस्तदा ॥ राज्यप्राप्तिं पितुः पुत्रशतं चैवात्मनः
शतम् ॥ १२ ॥ जीवितं च तथा भर्तुर्वव्रे तं सा तदाज्ञया ॥ प्रदक्षिणां ततः कृत्वा धर्मराजाय
सुव्रता ॥ १३ ॥ तथेत्युक्त्वा धर्मराजो जगाम च स्वमालयम् ॥ सा गता वटसामीप्यं कृत्वोत्संगे
शिरस्ततः ॥ १४ ॥ प्रबुद्धस्तु ततो ब्रह्मन् सत्यवानिदमब्रवीत् ॥ मया स्वप्नं वरारोहे दृष्टमद्यैव
भामिनि ॥ १५ ॥ तत्सर्वं कथितं तस्या यद्वृत्तं सर्वमेव तत् ॥ तया च कथितं सर्वं संवादं च

अपने लोक को गये, बाद सावित्री वट वृक्ष के समीप जाकर पति का शिर अपने गोद में पूर्ववत् कर बैठ गई ॥ १४॥
हे ब्रह्मन् ! तदनन्तर वह सत्यवान् जागकर यह वचन बोले कि हे वरारोहे ! हे भामिनि ! मैंने इस समय स्वप्न देखा
है ॥ १५ ॥ वह सब और सावित्री के सम्बन्ध का जो समाचार था वह सब सत्यवान् ने सावित्री से कहा । और

सावित्री ने भी यमराज के साथ जो बात चीत हुई थी उसे कहा ॥ १६ ॥ सूर्य नारायण के अस्त होने पर राजा द्युमत्सेन पुत्र के आगमन की आकांक्षा से इधर उधर दौड़ने लगे ॥ १७ ॥ राजा द्युमत्सेन पुत्रदर्शन की आकांक्षा से एक आश्रम से दूसरे आश्रम को जाते हैं और न मिलने पर विलाप करते है कि हम दोनों अन्धो का यष्टि (लकड़ी) समान वह सत्यवान् विना हम दोनों के कहां गया ॥१८॥ इस तरह वह सपत्नीक राजा विलाप करता हुआ दुःख से

यमेन हि ॥ १६ ॥ अस्तं गते ततः सूर्ये द्युमत्सेनो महीपतिः ॥ पुत्रस्यागमनाकांक्षी इतश्चेतश्च धावति ॥ १७ ॥ आश्रमादाश्रमं गच्छन् पुत्रदर्शनकांक्षया ॥ आवयोरन्धयोर्यष्टिः क्व गतोऽसौ विनाऽऽवयोः ॥ १८ ॥ एवं स विविधं क्रोशन् सपत्नीको महीपतिः ॥ चकार दुःखतप्तः सन् पुत्र पुत्रेति चासकृत् ॥ १९ ॥ अकस्मादेष राजेन्द्रो लब्धचक्षुर्महीश्वरः ॥ तदृदृष्ट्वा परमाश्चर्यं चक्षुःप्राप्तिं द्विजोत्तम ॥ २० ॥ सान्त्वपूर्वं तदा वाक्यमूचुस्ते तापसा भृशम् ॥ चक्षुःप्राप्त्या महाराज सूचितं ते महामते ॥ २१ ॥ पुत्रेण सह संयोगः प्राप्स्यसे नृपसत्तम ॥ २२ ॥

सन्तप्त होकर वारम्बार हे पुत्र ! हे पुत्र ! कहकर पुकारने लगा ॥१९॥ हे ब्राह्मण लोग ! अकस्मात् राजा द्युमत्सेन के नेत्र खुल गये । यह परम आश्चर्य देखकर ॥२०॥ आश्रमवासी तपस्वियों ने शान्तिपूर्वक वचन कहा कि हे महाराज ! हे महामते ! इस चक्षु (नेत्र) के मिलने से यह सूचित (मालूम) होता है ॥ २१ ॥ कि आपको पुत्र के साथ संयोग

होगा ॥२२॥ स्कन्दजी बोले कि हे ब्राह्मण लोग ! जबतक वे तपस्वी लोग इस तरह बात कर रहे थे, इतने में सत्यवान् ने समस्त द्विजों को नमस्कार कर माता पिता को नमस्कार किया ॥२३॥ हे ब्रह्मन् ! तदनन्तर वह कमलेक्षणा सावित्री ने सास श्वशुर के चरणों को प्रणाम किया ॥ २४ ॥ मुनिलोग बोले कि हे सावित्री ! हे वरवर्णिनि ! हे वरानने ! तुम वृद्ध श्वशुर के नेत्र-प्राप्ति का कारण जानती हो क्या ? ॥ २५ ॥ सावित्री बोली कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मै नेत्रप्राप्ति

स्कन्द उवाच ॥ यावदेवं वदन्त्येते तापसा द्विजसत्तम ॥ नमस्कृत्य द्विजान् सर्वान् मातरं पितरं ततः ॥ २३ ॥ सावित्री च ततो ब्रह्मन् ववन्दे चरणाविति ॥ श्वश्रूश्वशूरयोर्ब्रह्मन् सावित्री कमलेक्षणा ॥ २४ ॥ मुनय ऊचुः ॥ किं तु जानासि सावित्रि कारणं वरवर्णिनि ॥ वृद्धस्य चक्षुषः प्राप्तिः श्वशुरस्य वरानने ॥ २५ ॥ सावित्र्युवाच ॥ न जानामि मुनिश्रेष्ठाः चक्षुषः प्राप्ति-कारणम् ॥ चिरं सुप्तस्तु मे भर्ता तेन कालव्यतिक्रमः ॥ २६ ॥ सत्यवानुवाच ॥ अस्याः प्रभावात् सञ्जातं न दृश्यं यत्र कारणम् ॥ तत्सर्वं विद्यते विप्राः सावित्र्यास्तपसः फलम् ॥ २७ ॥

का कारण नहीं जानती हूँ, किन्तु मेरे पति देवता अधिक देरतक सो गये थे इसलिये देर हो गई है ॥२६॥ सत्यवान् बोले कि हे ब्राह्मण लोग ! इस सावित्री के प्रभाव से सब कुछ हुआ है परन्तु इसका कारण दृश्य नहीं है, यह सब सावित्री के तप का फल है ॥२७॥ मैं तो इस समय सावित्री के व्रत का ही माहात्म्य देख रहा हूँ ॥२८॥ स्कन्दजी

बोले कि हे प्रभो ! इस तरह सत्यवान् के साथ बात हो रही थी इतने में राजा द्युमत्सेन के पुरवासी लोगों ने आकर कहा कि हे राजन् ! वह राजा मारा गया ॥ २६ ॥ हे राजन् ! जिस क्रूर मन्त्री ने आपका राज्य हरण किया था वह आपका शत्रु भी मन्त्री से मारा गया, इस लिये ये सब पुरवासी आपके पास आये है ॥ ३० ॥ हे राज-

व्रतस्यैव तु माहात्म्यं दृष्टमेतन्मयाऽधुना ॥ २८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ एवं तु वदतस्तस्य तदा सत्यवतः प्रभो ॥ पौराः समागतास्तस्य आचख्युर्नृपतिर्हतः ॥ २६ ॥ येन राज्यं बलाद्राजन् हृतं क्रूरेण मन्त्रिणा ॥ अमात्येन हतः सोऽपि इति पौराः समागताः ॥ ३० ॥ पौरा ऊचुः ॥ उत्तिष्ठ राजशार्दूल स्वं राज्यं पालय प्रभो ॥ अभिषिञ्चस्व राजेन्द्र पुरे मन्त्रिपुरोहितैः ॥ ३१ ॥ स्कन्द उवाच ॥ स गत्वा राजशार्दूलः स्वपुरं जनसंवृतः ॥ पितृपैतामहं राज्यं सम्प्राप्तं च महात्मना ॥ ३२ ॥ सावित्री सत्यवांश्चैव परां मुदमवापतुः ॥ जनयामास पुत्राणां शतं वै बाहु-

शार्दूल ! हे प्रभो ! आप उठिये और अपने राज्य का पालन कीजिये, हे राजेन्द्र ! आप मन्त्री पुरोहितों के द्वारा राज्यासन पर अभिषिक्त हों ॥ ३१ ॥ स्कन्द जी बोले कि हे विप्र ! वह राजश्रेष्ठ पुरवासियो के साथ अपने नगर को जाकर पितृपैतामह का राज्य महात्मा द्युमत्सेन ने प्राप्त किया ॥ ३२ ॥ सावित्री और सत्यवान् दोनों परम

आनन्द के भागी भये और बाहुशाली सौ पुत्रों को पैदा किया ॥ ३३ ॥ तथा व्रत के माहात्म्य से सावित्री के पिता अश्वपति को भी यमराज के प्रसाद से सौ पुत्र हुये ॥ ३४ ॥ हे विप्र ! यह उत्तम व्रतमाहात्म्य आपलोगों से कहा, इसी व्रत के प्रभाव से क्षीणायु सावित्री का भर्त्ता जीवित हो गया । यह व्रत समस्त स्त्रियों को करना चाहिये,

शालिनाम् ॥ ३३ ॥ व्रतस्यैव तु माहात्म्यात्तस्याः पितुरजायत ॥ पुत्राणां च शतं ब्रह्मन् प्रसन्नाच्च यमात्तथा ॥ ३४ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं व्रतमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ क्षीणायुर्जीवितो भर्ता व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥ कर्तव्यं सर्वनारीणामवैधव्यफलप्रदम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

यह व्रत अवैधव्य (पतिसौभाग्य) फल को देने वाला है ॥ ३५ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥



स्कन्दजी बोले कि हे विप्र! प्रथम लोकप्रसिद्ध वृन्दारक नाम का ब्राह्मण हुआ, वह वेद शास्त्र का ज्ञाता, धनी और अनेक बन्धु बान्धव से सम्पन्न था ॥ १ ॥ उस ब्राह्मण की स्त्री रूप गुण से युक्त देवसेना नाम की थी, उस स्त्री के साथ ब्राह्मण ने चिरकाल पर्यन्त सुखभोग किया ॥ २ ॥ किसी समय वृद्धावस्था से युक्त वह ब्राह्मण पुत्रहीन होने के कारण अत्यन्त दुखी हो गया और उसने अनेकों व्रत तथा यथाविधि दोनों को किया ॥ ३ ॥ अब तक उस

स्कन्द उवाच ॥ पुरा वृन्दारको नाम ब्राह्मणो लोकविश्रुतः ॥ वेदशास्त्रपुराणज्ञो धनी च बहुबान्धवः ॥ १ ॥ देवसेनेति विख्याता भार्या रूपगुणान्विता ॥ धर्मपत्न्या तया सार्धं स सुखं चिरमन्वभूत् ॥ २ ॥ कदाचिज्जरया व्याप्तः पुत्रहीनः सुदुःखितः ॥ कृत्वा व्रतानि बहुशो दानानि च यथाविधि ॥ ३ ॥ न लेभे सन्ततिं पितृऋणमुक्तिकरीं यदा ॥ तदैव यातो गहनं प्राणान् दातुं महद्वनम् ॥ ४ ॥ स निद्राहाररहितो विकलोऽभूत्तदा द्विजः ॥ चतुर्थे दिवसे प्राप्ते मूर्च्छितः पतितो वने ॥ ५ ॥ करुणार्द्रो हि भगवान् ज्ञात्वा तस्यापि निश्चितम् ॥ द्विजरूपं समासाद्य

ब्राह्मण को पितृऋण से मुक्त करने वाली सन्तति न हुई तब वह ब्राह्मण प्राणत्याग करने के निमित्त गहन वन को गया ॥ ४ ॥ वन मे जाकर निद्रा भोजन का त्याग कर स्थित हो गया, चतुर्थ दिन विकलतावश वह ब्राह्मण मूर्च्छित होकर वन मे गिर पड़ा ॥ ५ ॥ दयालु भगवान् उसके निश्चय को जानकर ब्राह्मणवेश में होकर उसके पास

आये और वचन बोले ॥ ६ ॥ ब्राह्मण ने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? और प्राण त्याग क्यों करते हो ? । ब्राह्मण के श्रेष्ठ वचन को सुनकर वृन्दारक विप्र ने अपना सब वृत्तान्त कहा ॥ ७ ॥ समाचार सुनकर द्विजरूपी जनार्दन भगवान् पुनः बोले कि हे सखे ! तुम अपने गृह को जाओ और मुझसे उपदिष्ट व्रत को करो ॥ ८ ॥ ज्येष्ठ मास आने पर जितेन्द्रिय होकर सूर्योदय के समय प्रतिदिन स्नान करो ॥ ९ ॥ एक मास विधि-

तमुत्थाय वचोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ कोऽसि त्वं कुत आयातः किमर्थं त्यक्ष्यसे ह्यसून् ॥ वाक्यं तदाप्तवच्छ्रुत्वा स्ववृत्तान्तं न्यवेदयत् ॥ ७ ॥ श्रुत्वैवं पुनरूचे तं द्विजरूपी जनार्दनः ॥ सखे स्वभवनं गच्छ व्रतं कुरु मयोदितम् ॥ ८ ॥ ज्येष्ठमासे तु सम्प्राप्ते प्रातःस्नानं दिने दिने ॥ भानावनुदिते चैव कुरुष्व नियतेन्द्रियः ॥ ९ ॥ हविर्भुक् ब्रह्मचर्येण मासमात्रं यथाविधि ॥ त्रिविक्रमं समभ्यर्च्य दधिभक्तं समर्प्य च ॥ जलं संसिच्य वृक्षादीन् ब्राह्मणानां गृहे गृहे ॥ १० ॥ एवं तव द्विजश्रेष्ठ पुत्रोत्पत्तिर्भविष्यति ॥ उक्त्वैवान्तर्हितो जातः स द्विजोऽद्भुतदर्शनः ॥ ११ ॥ तं

पूर्वक ब्रह्मचर्य से रहकर हविष्यान्न भोजन करो और त्रिविक्रम भगवान् का पूजन तथा दही भात का नैवेद्य अर्पण करो । और वृक्षों में तथा ब्राह्मणों के गृह में जल दान करो ॥ १० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस उपाय के करने से तुमको पुत्र होगा, यह कहकर अद्भुत वह ब्राह्मण अन्तर्हित हो गया ॥ ११ ॥ वृन्दारक उसे विष्णुरूप मानकर अपने घर

को गया और अद्भुत ब्राह्मण के कथनानुसार अपनी स्त्री के साथ व्रत करने को तत्पर हुआ ॥ १२ ॥ तथा प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करने लगा। किसी समय दैवयोग से शरावती नदी के तटभाग के वृक्षों के झुण्ड में एक व्याघ्र को देखा, वह अत्यन्त भूखा व्याघ्र वृन्दारक के समीप आया ॥ १३—१४ ॥ उस व्याघ्र को समीप आया देखकर

विष्णुरूपं निश्चित्य प्रययौ स्वगृहं प्रति ॥ तेनोक्तं सकलं कर्तुमुद्यतोऽभूत्तया सह ॥ १२ ॥
प्रातःस्नानं कृतवता निशामन्ते दिने दिने ॥ कदाचिद्दैवयोगेन पुलिने वृक्षसंकुले ॥ १३ ॥
शरावत्या महद्घोरं व्याघ्रमेकं ददर्श सः ॥ बुभुक्षितमिवात्यर्थं तस्यान्तिकमथाययौ ॥ १४ ॥
भयव्याकुलितः सोऽपि जलपात्रमचिक्षिपत् ॥ तस्याम्बुकणिकास्पर्शाद्दिव्यदेहो बभूव ह ॥ १५ ॥
स्कन्द उवाच ॥ स उवाच प्रसन्नात्मा धन्योऽहं तव दर्शनात् ॥ ब्रह्मन् पुरा ह्यहं व्याधः कृत्वा हिंसा-
प्यनेकधा ॥ १६ ॥ तद्दोषाद्व्याघ्रतां प्राप्तो मुक्तोऽहं तव दर्शनात् ॥ पुण्यं करोषि किं भद्र तद्देहि

वृन्दारक ने जलपात्र को उसपर फेंका और जलबिन्दु के स्पर्श से वह व्याघ्र दिव्यदेह हो गया ॥ १५ ॥ तथा वह प्रसन्नात्मा व्याघ्र बोला कि हे ब्रह्मन्! आपके दर्शन से मैं धन्य हूँ। हे ब्रह्मन्! प्रथम मैं व्याध (बहेलिया) था और मैंने अनेकों हिंसा किया ॥१६॥ उस दोष से व्याघ्र हो गया था आज उस दोष से युक्त मैं आपके दर्शन से मुक्त हो

गया। हे भद्र! क्या आप पुण्य करते हैं?, हे भद्र! वह पुण्य कृपाकर मुझको दे दीजिये ॥ १७ ॥ व्याघ्र के ऐसा कहने पर वृन्दारक ब्राह्मण मासकृत पुण्य को उस व्याघ्र के लिये दे दिया और वह व्याघ्र मासकृत पुण्य के प्रभाव से स्वर्गलोक को गया ॥ १८ ॥ मासपुण्य देने के बाद वृन्दारक ब्राह्मण ने पुनः अद्भुत मासव्रत को किया और उस मासव्रत के प्रभाव से महान् ओजस्वी पुत्र पैदा हुआ ॥ १९ ॥ उस पुत्र के होने पर ब्राह्मण ने उस अद्भुत ब्राह्मण

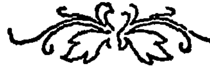
मदनुग्रहात् ॥ १७ ॥ एवमुक्तस्तदा तेन व्याघ्रेण द्विजपुङ्गवः ॥ ददौ मासकृतं पुण्यं तेन स्वर्लोकमागतः ॥ १८ ॥ पुनश्चकार विप्रोऽपि तद्व्रतं महदद्भुतम् ॥ तस्य पुण्यप्रभावेण जातः पुत्रो महौजसः ॥ १९ ॥ तदा तद्वचनं सत्यं मेने ब्रह्मकुलोद्भवः ॥ २० ॥ स्कन्द उवाच ॥ एतत्स्नानस्य माहात्म्यं कथितं द्विजसत्तमाः ॥ यदम्बुकणिकास्पर्शात् मुक्तः परमहिंसकः ॥२१॥ द्विजोऽपि

के वचन को सत्य माना ॥ २० ॥ स्कन्द जी बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने आप लोगों से मासस्नान का माहात्म्य कहा, जिस मासस्नान के जलबिन्दु स्पर्श से वह परम हिंसक व्याध मुक्त हो गया ॥ २१ ॥ और वृन्दारक ब्राह्मण को विष्णु सदृश और विष्णु भगवान् का भक्त वैष्णव पुत्र मिला। हे ब्राह्मण लोग! अब आपको क्या सुनने की

इच्छा है सो आप मुझसे कहिये ॥ २२ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्यवंशोद्भवव्याकरणाचार्य

तनयं लेभे वैष्णवं विष्णुसन्निभम् ॥ पुनः किं श्रोतुमिच्छ ावस्तत्सर्वं कथयन्तु नः ॥ २२ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां 'भाषाटीकायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥



॥८१॥

ऋषिलोग बोले कि हे स्कन्द जी ! ज्येष्ठ मास में स्नान दान और माहात्म्य श्रवण तथा पुराण पुरुषपूजन का फल विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ स्कन्द जी बोले कि हे ऋषि लोग ! आप सब लोग ज्येष्ठस्नान के फल का श्रवण करें, जिसके फलश्रवण से प्राणी तीनों (मन वचन कर्मकृत) पाप से मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥ जो प्राणी वृष के सूर्य होने पर 'मैं प्रातःकाल ज्येष्ठस्नान करूँगा' ऐसा संकल्प कर जल मे प्रवेश करता है उसके तीनों पाप नष्ट हो

ऋषय ऊचुः ॥ ज्येष्ठस्नानस्य दानस्य माहात्म्यश्रवणस्य च ॥ फलं विस्तरतो ब्रूहि पुराणपुरुषो वरः ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे ज्येष्ठस्नानफलश्रुतिम् ॥ यां श्रुत्वा मुच्यते जन्तुस्त्रिविधादपि पातकात् ॥ २ ॥ वृषभस्थे सवितरि ज्येष्ठस्नानं करोम्यहम् ॥ प्रविष्टमात्रस्तु जले त्रिविधं पातकं गतम् ॥ ३ ॥ ज्येष्ठस्नानं प्रकर्तव्यं यावदनुदिते रवौ ॥ ज्येष्ठे यामार्धपर्यन्तं उदके यत्र कुत्रचित् ॥ ४ ॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि गङ्गादीनि वसन्ति हि ॥ तावत् स्नानं प्रकर्तव्यं यावद्यामार्धकं भवेत् ॥ ५ ॥ ततः शपन्ति चास्नातान् दैवेनोपहताञ्जनान् ॥ अतः

जाते हैं ॥ ३ ॥ सूर्योदय के पूर्व ज्येष्ठस्नान करना चाहिये, ज्येष्ठमास में सूर्योदय से लेकर आधा प्रहर पर्यन्त जहां कहीं भी जल में ॥ ४ ॥ गङ्गादि सभी तीर्थ वास करते है । इस लिये सूर्योदय से लेकर आधा प्रहर के पूर्व स्नान कर लेना चाहिये ॥ ५ ॥ आधा प्रहर के बाद स्नानहीन दैव से उपहत जनों को वे तीर्थ शाप देते है । इस लिये ज्येष्ठ

मास मे श्रेष्ठ जनों को स्नान करना चाहिये ॥ ६ ॥ ईर्षा, धन, लोभ, सेवा, हठ, लोकापवाद, निमित्त, स्वेच्छा, भय, पाखण्ड, सुख लिप्सा, आदि किसी भी उपाय से ज्येष्ठ स्नान करना चाहिये। परन्तु कलि में अधिक पाप होने के कारण ज्येष्ठस्नान अत्यन्त दुर्लभ होगा ॥ ७-८ ॥ श्रेष्ठ स्नान के श्रेष्ठ फल से डरकर यमराज ने इसे गुप्त रखने के निमित्त त्रिविक्रम (विष्णु भगवान्) से प्रार्थना किया और विष्णु की आज्ञा से इसे गुप्त कर रखा है। इस ज्येष्ठमास

स्नानं प्रकर्तव्यं ज्येष्ठे मासि नरोत्तमैः ॥ ६ ॥ ईर्षया धनलोभाभ्यां सेवया वा समागतम् ॥ हठाल्लोकापवादाच्च निमित्तेन यदृच्छया ॥ ७ ॥ भीत्या पाखण्डनेनैव कर्तव्यं सुखलिप्सया ॥ कलौ तु पापबाहुल्याज्ज्येष्ठे स्नानं सुदुर्लभम् ॥ ८ ॥ यमेन गोपितं भीत्या प्रार्थयित्वा त्रिविक्रमम् ॥ विघ्नानि सम्भवन्तीह स्वल्पपुण्यकृतामिह ॥ ९ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ यमेन मासमाहात्म्यं गोपितं केन हेतुना ॥ विघ्नानि कुरुते कस्माज्ज्येष्ठे पुण्यवतां नृणाम् ॥ १० ॥ एतत्कौतूहलं श्रोतुमिच्छामस्तद्वदस्व नः ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ अत्रार्थे कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ यच्छ्रुत्वा

में स्वल्प कर्म करने वालों को विघ्न होते हैं ॥ ९ ॥ ऋषि लोग बोले कि हे स्कन्दजी ! यमराज ने मासमाहात्म्य को गुप्त क्यों किया ? और ज्येष्ठ में पुण्य कर्म करने वालों के कार्य मे विघ्न क्यों करते हैं ॥ १० ॥ हे स्कन्दजी ! यह सब सुनने की बहुत इच्छा है सो आप हम लोगों से कहिये ॥ ११ ॥ सूत जो बोले कि इस विषय मे मैं प्राचीन

इतिहास कहूँगा जिसके श्रवण से आप लोगों के हृदय का संदेह दूर हो जायगा ॥ १२ ॥ प्रथम माहिष्मती पुर (नगर) में कनक नाम का ब्राह्मण रहता था वह समस्त विद्या से हीन, मूर्ख और परनिन्दक था ॥ १३ ॥ और कृषिकर्म का करने वाला वह नित्य क्रय विक्रय करता था, और भी अनेकों व्यवसाय से कुटुम्ब का उदर पूर्ण करता था ॥ १४ ॥ इतने पर भी उस दुरात्मा कुटुम्बी को तृप्ति न हुई और उसने उदरपूर्त्ति के निमित्त मार्ग में पथिकों

भवतां गच्छेत् संशयो हृदि संस्थितः ॥ १२ ॥ पुरा माहिष्मतिपुरे ब्राह्मणः कनकाभिधः ॥ सर्व-विद्यापरिभ्रष्टो मूर्खो निन्दापरायणः ॥ १३ ॥ कृषिकर्मकरो नित्यं क्रयविक्रयकारकः ॥ अनेकव्य-वसायेन कुटुम्बोदरपूरकः ॥ तत्रापि नाभवत्तृप्तिः कुटुम्बस्य दुरात्मनः ॥ १४ ॥ जघान पथिकान् मार्गे कुटुम्बोदरपूर्तये ॥ तथापि नाभवत्तृप्तिश्चौर्यं कुर्वन् द्विजाधमः ॥ १५ ॥ एवं प्रतिदिनं कुर्वन् माहिष्मत्यां द्विजाधमः ॥ कस्मिंश्चित्समये दृष्टो धृतस्तैर्ग्रामवासिभिः ॥ १६ ॥ बबन्धुस्ताडयामासुर्बहिर्निष्कासितः पुरात् ॥ उवास कतिचित्कालं अरण्ये ग्रामसन्निधौ ॥ १७ ॥ निशायां गृह-

का वध किया। फिर भी जब तृप्ति न हुई तो उस द्विजाधम ने चोरी किया ॥ १५ ॥ इस तरह वह द्विजाधम माहिष्मती नगरी में रहकर प्रतिदिन यह काम करता था। किसी दिन चोरी करते देखे जाने के कारण उसे ग्रामवासियों ने पकड़ा ॥ १६ ॥ और बांधकर अच्छी तरह पीटा तथा अपने नगर से उसे निकाल दिया। वह

कुछ दिन ग्राम के समीप वन में जाकर रहा ॥ १७ ॥ और रात्रि मे गृह मे आकर पुनः वन चला जता था,
तथा वन में श्वापद (पशुओं) का वध कर वह निर्घृण (निर्दय) भक्षण करता था ॥ १८ ॥ इस तरह काम करते
उसको बहुत समय बीत गया । हे राजन् ! बहुत समय बीतने के बाद जब ज्येष्ठमास आया ॥ १९ ॥ तब वह कनक
ब्राह्मण अर्धरात्रि के समय वन से अपने गृह को आया और वस्त्र अलङ्कार की चोरी कर पुनः वन को

मागत्य पुनरेव वनं ययौ ॥ अरण्ये श्वापदान् हत्वा भक्षयामास निर्घृणः ॥ १८ ॥ एवं प्रकुर्व-
तस्तस्य कालो बहुतरो गतः ॥ कालेन बहुना राजन् ज्येष्ठमासः समागतः ॥ १९ ॥ निशीथे
कनकोऽरण्यादागतः स्वगृहं प्रति ॥ जहार वस्त्रालङ्कारान् पुनर्गन्तु वनं ययौ ॥ २० ॥ मार्गे
ददर्श सरितमुत्तीर्य वनमाययौ ॥ अज्ञातज्येष्ठमासस्य स्नानं जातं द्विजन्मनः ॥ २१ ॥ प्रत्यहं
गहनादेत्य स्तेयेनापादितं वसु ॥ गृहीत्वा वनमायाति तदा स्नाति दिने दिने ॥ २२ ॥ एवं
मासो गतस्तस्य स्नानतोऽज्ञानतः सदा ॥ ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां निशायां द्विजसत्तम ॥ २३ ॥

गया ॥ २० ॥ मार्ग मे नदी को देखा और उसे तैरकर पार किया, इस तरह अज्ञान वश ज्येष्ठमास मे उस ब्राह्मण
ने स्नान किया ॥२१॥ और प्रतिदिन रात्रि मे वन से आकर चोरी करता था और चोरो का धन लेकर प्रतिदिन उस
नदी में स्नान करता हुआ वन को जाता था ॥ २२ ॥ इस तरह सदा अज्ञानवश स्नान करते उसे एक मास बीत
गया । हे द्विजश्रेष्ठ ! ज्येष्ठशुक्ल चतुर्दशी की रात्रि में ॥२३॥ धन वस्त्र की चोरी कर गठर बांधा और नगर के बाहर

आया, तबतक प्रभात का समय हो गया था और इधर उधर लोगों को देखकर ॥ २४ ॥ वहां से भागता हुआ नदी के तटपर आया, लोगों ने समीप पहुँचकर उसे पीठ पर काष्ठ (लकड़ी) पाषाण (पत्थर) से खूब पीटा ॥ २५ ॥ इतने मे वह कनक उस भार को शिर पर धरकर अगाध जल में पहुँचा और अधिक शिथिल होने के

जहार धनवस्त्राणि बद्ध्वा ग्रन्थिं बहिर्ययौ ॥ तावत् प्रभातसमये दृष्ट्वा लोकानितस्ततः ॥२४॥
पलायनपरो भूत्वा सरित्तीरमुपाययौ ॥ पृष्ठे काष्ठैश्च पाषाणैस्ताडयामासुरन्तिकम् ॥ २५ ॥
धृत्वा शिरसि तं भारमगाधे पयसि स्थितः ॥ पपात सलिले तस्मिन् पञ्चत्वं समुपागतः ॥ २६ ॥
वैकुण्ठादागतं दिव्यं विमानं सूर्यवर्चसम् ॥ किमिदं किमिदं चेति विस्मिताः सकला जनाः ॥२७॥
तत्रस्थैः पुरुषैः कैश्चिदुद्धृतो नीतो जलाद्बहिः ॥ कनकोऽयं द्विजोऽत्रस्थोऽस्माभिर्ग्रामाद्बहिः
कृतः ॥ २८ ॥ तत्क्षणात् परमं रूपं सम्प्राप्तः कनको द्विजः ॥ सविमानांस्ततो दूतानूचेऽसौ

कारण उस अगाध जल में गिर कर मर गया ॥ २६ ॥ उस कनक के लिये सूर्य के समान तेजयुक्त दिव्य विमान वैकुण्ठ से आया। इधर उस कनक को अगाध जल में डूबते देखकर यह क्या हुआ, यह क्या हुआ कहते हुये सभी लोग विस्मित होगये ॥ २७ ॥ नदीतट के कुछ लोगों ने उस अगाध जल से निकाल कर उसे बाहर किया, उसे देखकर लोगों ने कहा कि यह तो इसी नगर का रहने वाला कनक ब्राह्मण है, हमलोगो ने इसे नगर के बाहर कर

दिया था ॥ २८ ॥ उसी च्चण मे वह कनक ब्राह्मण उत्तम रूप को प्राप्त होकर वह दिव्यपुरुष विमान के सहित दूतों को देखकर बोला ॥ २९ ॥ दिव्यपुरुष बोला कि हे दूतलोग ! यह वैकुण्ठ से आया हुआ विमान किस पुण्य से प्राप्त हुआ है ? ॥ ३० ॥ देवदूत बोले कि हे कनक ब्राह्मण ! अज्ञात ज्येष्ठमास के स्नान से यह दुर्लभ विमान मिला है, यह सुनकर विमान पर सवार होकर वैकुण्ठ लोक को चला गया ॥ ३१ ॥ और वह कनक ब्राह्मण विष्णु

दिव्यपूरुषः ॥ २९ ॥ दिव्यपुरुष उवाच ॥ केन पुण्येन सम्प्राप्तं वैकुण्ठादिदमागतम् ॥ ३० ॥
दूता ऊचुः ॥ अज्ञातज्येष्ठमासस्य स्नानेनाप्तं सुदुर्लभम् ॥ तच्छ्रुत्वा यानमारुह्य वैकुण्ठभुवनं
गतः ॥ ३१ ॥ स्वरूपतां भगवतः सम्प्राप्तः कनको द्विजः ॥ तच्छ्रुत्वा परमं दुःखं प्राप्तः
संयमिनीपतिः ॥ ३२ ॥ गोपयामास माहात्म्यं सम्प्रार्थ्य जगतां पतिम् ॥ इति वः कथितं विप्रा
मासस्नानफलं द्विजाः ॥ ३३ ॥ इति श्रीभविष्ये ज्येष्ठमासमाहात्म्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

भगवान् के समान रूप को प्राप्त हुआ । तथा यमराज इस समाचार को सुनकर परम दुखी हो गये ॥ ३२ ॥ और यमराज ने जगत्पति विष्णु भगवान् से प्रार्थना कर ज्येष्ठमास माहात्म्य को गुप्तकर रखा । हे द्विज लोग ! मैंने आप लोगों से ज्येष्ठमास के स्नान का माहात्म्य फल कहा ॥ ३३ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्य-वंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

सूतजी बोले कि हे ऋषिलोग ! आप सब लोग श्रवण करें, जो फल माहात्म्य श्रवण से मिलता है वह सौ यज्ञ करने पर भी नहीं मिल सकता ॥ १ ॥ समस्त दान देने से, समस्त तीर्थों में स्नान करने से और जपयज्ञ से जो फल मिलता है, वह फल माहात्म्य श्रवण से मिलता है ॥ २ ॥ सम्पूर्ण माहात्म्य श्रवण करने से मनुष्य पुनजन्म का

सूत उवाच ॥ शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे माहात्म्यस्य च यत्फलम् ॥ प्राप्यते श्रोतृभिः पुम्भिर्न तत् क्रतुशतैरपि ॥ १ ॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ यत्फलं जपयज्ञेन माहात्म्य-श्रवणेन तत् ॥ २ ॥ माहात्म्यं सकलं शृण्वन्न पुनर्जन्मभाग्भवेत् ॥ समग्रं वा तदर्धं वा तदर्ध वा तदर्धकम् ॥ ३ ॥ अध्यायं वा तदर्धं वा श्लोकं श्लोकार्धमेव च ॥ यः शृणोति सदा भक्त्या तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ४ ॥ श्रेयांसि बहुविघ्नानि स्वल्पपुण्यवतां द्विजाः ॥ तस्मात् पुण्यं

भागी नहीं होता। सम्पूर्ण, अथवा आधा, अथवा आधा का आधा, अथवा चतुर्थांश का आधा ॥ ३ ॥ अथवा एक अध्याय, आधा अध्याय, एक श्लोक, आधा श्लोक जो भक्ति श्रद्धा से श्रवण करता है उसको अनन्त पुण्य होता है ॥ ४ ॥ हे द्विजलोग ! स्वल्प पुण्यवान् पुरुषों के पुण्यकार्य में अनेको विघ्न होते है, इस लिये विघ्नशान्ति

के निमित्त मनुष्य को पुण्य करना चाहिये ॥ ५ ॥ यदि स्नान कर्म और माहात्म्य श्रवण कर्म में विघ्न आ जाय तो उस विघ्नभय से पुण्य का त्याग न करे, उस कर्म को दूसरे से करा देवे ॥ ६ ॥ पुनः पुनः पुण्यकर्म करने से विघ्नों का नाश हो जाता है। कलि में करने के योग्य बहुत से कर्म कहे है ॥ ७ ॥ कलियुग के

प्रकर्तव्यं नरैर्विघ्नोपशान्तये ॥ ५ ॥ यदि विघ्नं समापन्नं स्नाने श्रवणकर्मणि ॥ न त्याज्यं तद्विघ्नभिया पुण्यं तत्कर्म कारयेत् ॥ ६ ॥ विघ्नानि नाशमायान्ति असकृत्पुण्यकर्मणा ॥ बहूनि सन्ति पुण्यानि कलौ चोक्तानि यानि च ॥ ७ ॥ तेषु श्रेष्ठतमं प्रोक्तं पुराणश्रवणं कलौ ॥ गोघ्नः स्त्रीघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नः पितृघातकः ॥ ८ ॥ मातृहा मद्यपी कुष्ठी स्तेयी विश्वासघातकः ॥ ते सर्वे प्रतिमुच्यन्ते पुराणश्रवणात् कलौ ॥ ९ ॥ पुराणश्रवणं कार्यं बालवृद्धातुरैरपि ॥ निष्कामैश्च सकामैश्च उत्तमाधममध्यमैः ॥ १० ॥ पुराणश्रवणं कार्यं स्त्रीशूद्रैः पतितैरपि ॥ तत्तरफल-

समय उन सभों में पुराणश्रवण श्रेष्ठ कहा है। गोहत्यारा, स्त्रीहत्यारा, कृतघ्न, ब्राह्मण हत्यारा, पितृघाती ॥ ८ ॥ मातृवध कर्ता, मद्यपी, कुष्ठी, चोर, विश्वासघाती ये सब कलियुग मे पुराणश्रवण करने से पापमुक्त हो जाते है ॥९॥ पुराण का श्रवण बालक वृद्ध आतुर निष्काम सकाम उत्तम मध्यम अधम सभी को करना चाहिये ॥ १० ॥ स्त्री

शूद्र पतित भी पुराण का श्रवण करे, पुराणश्रवण से तत्तत् सभी इष्ट फल को पाता है ॥ ११ ॥ अकाम (निष्काम) सकाम, आस्था, अनास्था, स्पर्धा, कपट, निस्पृह, सस्पृह सभी लोग ॥ १२ ॥ पुराण श्रवण से स्वमनोरथ को पाते हैं। भक्तिहीन होकर भी पातकी इस माहात्म्य का श्रवण कर स्वर्ग को गया ॥ १३ ॥ इस विषय में मैं पापनाशिनी

मवाप्नोति यथा मनसि निश्चितम् ॥ ११ ॥ अकामेन सकामेन आस्थया वाप्यनास्थया ॥ स्पर्धया कपटेनापि निस्पृहेन स्पृहावता ॥ १२ ॥ पुराणश्रवणेनैव प्राप्नुवन्ति मनोरथान् ॥ अभक्त्या श्रवणेनापि पापनिष्ठो दिवं गतः ॥ १३ ॥ अत्रार्थे कथयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ द्वारावत्यां पुरा कश्चिद्देवशर्मा द्विजाधमः ॥ १४ ॥ ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टो सर्वदा प्रेतकर्मकृत् ॥ सर्वदा दुष्टकर्माणि चकारापि न किञ्चन ॥ १५ ॥ लेभे कुटुम्बवाहार्थं दस्युवृत्तिं चकार सः ॥ ततस्तस्मिन् पुरे रम्ये बहवो वत्सरा गताः ॥ १६ ॥ अथ तद्दैवयोगेन मासः शुक्रः समागतः ॥ तत्र

कथा को कहूँगा। प्रथम द्वारका पुरी में देवशर्म्मा नामक ब्राह्मणाधम रहता था ॥ १४ ॥ ब्रह्मकर्म से भ्रष्ट वह ब्राह्मण सर्वदा प्रेतकर्म करता था और सर्वदा दुष्टकर्म करता था ॥ १५ ॥ परन्तु फिर भी कुटुम्ब के निर्वाह के निमित्त चोरी का काम सुरू किया। इस तरह उस रमणीय नगर में बहुत वर्ष बीत गये ॥ १६ ॥ तदनन्तर दैवयोग से ज्येष्ठ

का महीना आया, ज्येष्ठ मास में सभी नागरिक ज्येष्ठस्नान करने को उद्यत हुये ॥ १७ ॥ और बलि (दानवस्तु) पूजा सामान को लेकर प्रतिदिन गोमती में स्नान के निमित्त जाते थे, तथा वहां जाकर स्नानोत्तर वस्त्र धारण कर विष्णुमन्दिर में जाते थे ॥ १८ ॥ तदनन्तर सभी एकत्रित होकर ब्राह्मणश्रेष्ठ को व्यासासन देकर यथाशक्ति

नागरिकाः सर्वे शुक्रस्नानार्थमुद्यताः ॥ १७ ॥ बलिपूजां समागृह्य गोमत्यां ययुरन्वहम् ॥ तत्र स्नात्वा स्वलङ्कृत्य ययुस्ते विष्णुमन्दिरम् ॥१८॥ ततः सर्वे समागम्य व्यासं कृत्वा द्विजोत्तमम् ॥ पूजयित्वा यथाशक्त्या वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥ १९ ॥ माहात्म्यश्रवणं तस्मात् कुर्याज्ज्येष्ठस्य सादरम् ॥ एवं यामद्वयं तत्र स्थित्वा पश्चान्निजालयम् ॥ २० ॥ जग्मुर्दिनेषु गच्छत्सु कतिचित्स द्विजाधमः ॥ स्तेयं कर्तुं समुद्युक्तो सोऽपि यातो निरन्तरम् ॥ २१ ॥ ह्रदस्थानसमायुक्तः

वस्त्र अलङ्कार आदि से पूजाकर ॥ १९ ॥ उस व्यास से आदर पूर्वक ज्येष्ठमास का माहात्म्य श्रवण करते थे। इस तरह दो प्रहर वहां रहकर अपने गृह को आते थे ॥ २० ॥ कतिपय दिन बीतने पर वह द्विजाधम चोरी के निमित्त उद्यत चोरी करने निरन्तर जाया करता था ॥२१॥ और कहां से क्या चोरी करें इस चिन्ता मे उसे वहां तालाव पर

बहुत दिन बीत गया परन्तु उसे चोरी करने का मोका न मिला ॥२२॥ आज कल्ह मे वस्त्र आभूषण की चोरी करूँगा इसी विचार में सभ समय बीत गया और पूर्णिमा तिथि आ गई ॥ २३ ॥ उस दिन सभी लोगों ने उत्साह-पूर्वक स्नानादि क्रिया करके पुराण का श्रावण किया और व्यास का पूजन ॥ २४ ॥ वस्त्र आभूषण द्रव्य फल फूल

किन्नेयमित्यचिन्तयत ॥ न लेभेऽवसरं तत्र गतास्तु बहुवासराः ॥ २२ ॥ अद्य श्वो वा हरिष्यामि वस्त्राण्याभरणानि च ॥ एवं रटतमानस्य आगता पूर्णिमा शुभा ॥ २३ ॥ तस्यां समुत्सुकाः सर्वे कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः ॥ तथा पुराणश्रवणं कृत्वा व्यासस्य पूजनम् ॥ २४ ॥ वस्त्रालङ्करणैर्दिव्यैः फलताम्बूलसंयुतैः ॥ तद्द्वारमभवत्तत्र दृष्ट्वा दस्युर्व्यचिन्तयत् ॥ २५ ॥ अद्याहं घातयिष्यामि व्यासं तद्द्रविणेच्छया ॥ २६ ॥ अस्य सर्व हरिष्यामि ममेदं दैवचोदितम् ॥ इति निश्चित्य मनसि स्वयं तत्र समागतः ॥ २७ ॥ पौराणिकं समभ्यर्च्य दण्डवत् पतितो

ताम्बूल से किया। वहां इस देवशर्मा ने चोरी का मोका देखकर विचार किया कि ॥ २५ ॥ आज मैं धन की इच्छा से इस व्यास का वध करूँगा ॥ २६ ॥ दैव से प्राप्त इस व्यास के समस्त वस्तु का आज मैं चोरी करूँगा, मन में ऐसा निश्चय कर स्वयं वहां आया ॥ २७ ॥ व्यास का पूजन कर दण्डवत् पृथिवी पर गिरकर प्रणाम किया और

बोला कि हे विप्र ! मैं अकिञ्चन (दरिद्र) हूँ, मैंने आपको अपना शरीर दिया ॥ २८ ॥ मै आपका दास हूँ, आप यथासुख मेरी सेवा ग्रहण करें। और उसने सभों से अधिक कृत्रिम भक्ति दिखलाई ॥ २९ ॥ तदनन्तर सूर्यास्त हो जानेपर सभी लोग चले गये। वहां पर दो आदमी रह गये, उनमें से एक धूर्त और दूसरे व्यास ॥ ३० ॥ हे राजन् ! बाद पौराणिक ने इधर उधर से सभी सामानों को एकत्रित कर एक बृहत् गठर बांधकर उसके मस्तक पर

भुवि ॥ अकिञ्चनोऽस्म्यहं विप्र दत्तं तव कलेवरम् ॥ २८ ॥ दासोऽहमिति मत्वा मां सेवां गृह्य यथासुखम् ॥ सर्वेभ्योऽप्यधिकां भक्तिं दर्शयामास कृत्रिमाम् ॥ २९ ॥ ततो विनिर्गताः सर्वे यातेऽस्तं तिग्मतेजसि ॥ तत्रावशिष्टौ द्वौ तत्र धूर्तः पौराणिकस्तथा ॥ ३० ॥ ततः पौराणिको राजन् समाकर्षदितस्ततः ॥ ग्रन्थिं बद्ध्वा ददौ तस्य मस्तके सुबृहत्तराम् ॥३१॥ तया नम्रशिरो जातो हृष्यमाणो मुहुर्मुहुः ॥ एवं विनिर्गतौ मार्गे दुष्टेन व्यवचिन्तितम् ॥ ३२ ॥ ततोऽसौ ह्रद-

रख दिया ॥ ३१ ॥ उस बोझ से नीचा शिर करके वारम्वार प्रसन्न होता हुआ जा रहा था। इस तरह दोनो चले मार्ग में उस दुष्ट ने विचार किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर वह तालाव के मार्ग से धीरे २ व्यासजी के साथ जा रहा था, तालाव के पास पहुँच कर जनसमुदाय में खुसकर भाग गया ॥ ३३ ॥ आगे जाकर मार्ग में पैर खिसक जाने से

जलरहित कूआ मे गिर गया। और ब्राह्मण उसे न देखकर उस समय अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥३४॥ तथा वहां पर बड़ा कोलाहल किया जिससे सभी लोग एकत्रित हो गये। तब व्यास ने कहा कि अहो ? उसी धूर्त ने मेरा सब हरण किया है ॥३५॥ उस दुष्ट का कैसे विश्वास किया, मैं मन्दबुद्धि हूँ। अज्ञात चरित्र वाले मनुष्य में जो निन्दित मनुष्य

मार्गेण तेन साकं ययौ शनैः ॥ ह्रदे बहुजनाकीर्णे पलायनपरोऽभवत् ॥ ३३ ॥ तदैव प्रस्खलन् मार्गे कूपे निरुदकेऽपतत् ॥ नापश्यत्तं यदा विप्रस्तदैवाकुलितो भृशम् ॥ ३४ ॥ कोलाहलः कृतस्तेन सर्वै तत्र समागताः ॥ अहो तेनैव धूर्तेन हृतं सर्वं खिलं मम ॥ ३५ ॥ दुष्टे योऽहं मन्दबुद्धिर्विश्वस्तोऽहं कथं जनाः ॥ अविज्ञातप्रबन्धे च विश्वसन्ति नराधमाः ॥ ३६ ॥ तद्वशे नाशमायान्ति बिडाले मूषको यथा ॥ एवं तद्वचनं श्रुत्वा पौरो राजानमब्रवीत ॥ ३७॥ पुरद्वारे तु निखिलैः सर्वैः स्थित्वा इतस्ततः ॥ बाह्यमाभ्यन्तरं चैव अन्तःस्थं वाह्यमेव च ॥ ३८॥ न यात्येवं

विश्वास करते है ॥३६॥ वे उसके वश में होकर नष्ट हो जाते है, जैसे बिडाल के वश में मूपक नष्ट हो जाता है। इस प्रकार व्यास के वचन को सुनकर पुरवासियों ने राजा से जाकर कहा कि ॥३७॥ पुर (नगर) के द्वार पर स्थित सभी लोग इधर उधर बाहर भीतर, भीतर रहने वाले और बाहर रहने वाले ॥ ३८ ॥ सभी स्थानों में चोर का अन्वेषण

हुआ । तदनन्तर सूर्योदय होने पर जब दूतो ने पुनः अन्वेषण सुरू किया ॥३९॥ तब कुछ लोगों ने उसे कूप के अन्दर देखकर राजा से कहा । राजा की आज्ञा से उसे कूप के बाहर निकाला, उसके प्राण कुछ शेष रह गये थे ॥४०॥ उससे सब वस्तु लेकर ब्राह्मण (व्यास) को दे दिया, इसके बाद उसके प्राण निकल गये ॥४१॥ वह दिव्य देहधारी होकर

विधं कार्यं दस्योश्चान्वेषणं तथा ॥ ततः समुदिते भानौ दूता अन्वेषणं यदा ॥ ३९ ॥ कूपस्थं ददृशुः केचित् केचिद्राजानमूचिरे ॥ कूपान्निष्काशितस्तूर्णं प्राणशेषं नृपाज्ञया ॥ ४० ॥ ददौ सर्वं द्विजेन्द्राय सोऽपि प्राणान् मुमोच ह ॥ ४१ ॥ दिव्यदेहधरो भूत्वा विमानवरमास्थितः ॥ तान् पौरान् प्रणनामाशु अयं भवदनुग्रहः ॥ ४२ ॥ ततस्ते विस्मिताः सर्वे महिमानं प्रतुष्टुवुः ॥ सोऽपि वैकुण्ठनिलयं माहात्म्यश्रवणाद्ययौ ॥ ४३ ॥ स्कन्द उवाच ॥ एतन्मया निगदितं माहात्म्यं तव

श्रेष्ठ विमान पर बैठकर पुरवासियों को प्रणाम कर बोला कि यह आप लोगों के अनुग्रह से मिला है ॥४२॥ तदनन्तर विस्मित होकर सभी लोगों ने ज्येष्ठमास माहात्म्य की प्रशंसा की । और उन पुरवासियों के मुख से माहात्म्य सुनकर वह भी वैकुण्ठ लोक को गया ॥ ४३ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे विप्रलोग ! यह मैंने तुमसे विस्तार से पुराणश्रवण तथा

अभक्त पातकी का माहात्म्य कहा ॥ ४४ ॥ जो भक्तिभाव से माहात्म्य का श्रवण करते हैं उनके श्रेष्ठ भाग्य का क्या कहना है। जो लोग मोहवश अपनी शक्ति के अनुसार व्यास का पूजन नहीं करते हैं ॥ ४५ ॥ वे दारिद्र्य रोग से युक्त होते है, इसमें संशय नहीं हैं। जो लोग पुराण का श्रवण नहीं करते और त्रिविक्रम भगवान् का दर्शन

विस्तरात् ॥ पुराणश्रवणस्यापि अभक्तस्यापि पापिनः ॥ ४४ ॥ किं पुनर्भक्तिभावेन शृण्वतां भाग्यमुत्तमम् ॥ ये न कुर्वन्ति वै मोहात् स्वशक्त्या व्यासपूजनम् ॥ ४५ ॥ दारिद्र्यरोगसंयुक्तास्ते भवन्ति न संशयः ॥ पुराणं ये न शृण्वन्ति न पश्यन्ति त्रिविक्रमम् ॥ ४६ ॥ ते मूका बधिराश्चापि पङ्गवश्च न संशयः ॥ एवं श्रुत्वा स्कन्दमुखात् प्रीणन्तस्ते द्विजोत्तमाः ॥ ४७ ॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि षडास्यं नन्दनोद्भवैः ॥ ननृतुश्च पुरः केचित् पूपुजुश्चोपचारकैः ॥ ४८ ॥ मुदिता-

नहीं करते है ॥ ४६ ॥ वे लोग मूक (गूँगा) बधिर (बहिरा) पङ्गु होते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस तरह स्कन्दजी के मुख से माहात्म्य श्रवण कर वे सब ब्राह्मण ॥ ४७ ॥ नन्दनवन के पुष्पो की स्कन्दजी पर वर्षा करने लगे और कुछ लोग नाचने लगे तथा कुछ लोग उपचारों से पूजन करने लगे ॥ ४८ ॥ श्रेष्ठ माहात्म्य श्रवण कर वे सब

प्रसन्न हो गये और भी बारम्बार माहात्म्य पूछने लगे ॥ ४९ ॥ इति श्री भविष्यपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये सनाढ्य-

स्तेऽपि ऋषयो माहात्म्यं ज्येष्ठसम्भवम् ॥ श्रुत्वा पप्रच्छुस्ते सर्वे माहात्म्यं च पुनः पुनः ॥ ४९ ॥

इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे ज्येष्ठमासमाहात्म्ये फलश्रुतिवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

वंशोद्भवव्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतायां भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥ इति ज्येष्ठमासमाहात्म्यं समाप्तम् ॥



पं० कैलासनाथ भार्गव द्वारा भार्गवभूषण प्रेस, त्रिलोचन काशी में मुद्रित ।

* इति *

ज्येष्ठमासमाहात्म्यम्

* भाषाटीकया सहितम् *

वार्चनपद्धतिः

ार्चनपद्धति" से बढ़कर और कोई पुस्तक नहीं है।

पूजन तथा षोड़शोपचार सहित वैदिक तथा पौराणिक मन्त्रों द्वारा शिवपूजन की मुख के पूजन के मन्त्र और विधि लिखी गयी है। साथ ही न्यास विधि, तर्पण- हैं।

ावषडक्षरस्तोत्र, शिवमहिम्नस्तोत्र, शिवताण्डवस्तोत्र, प्रदोषस्तोत्राष्टक और महा- है कि इस पुस्तक मे वैदिक मन्त्रों के स्वर अत्यन्त शुद्ध और मोटे टाइप के हैं।

ेकर प्रत्येक शिव-भक्त सविधि शिवपूजन कर शिवपूजा का यथार्थ फल प्राप्त कर सकता है। पुस्तक की छपाई-सफाई दिव्य होते हुए भी लागतमात्र मूल्य सिर्फ १।।) रुपया रखा गया है।

शीघ्रता से पुस्तक मँगाइये अन्यथा पीछे पछताना होगा।

प्रकाशक—भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, बनारस १. ब्राञ्च—कचौड़ीगली, बनारस।

❋ अथ ❋



ज्येष्ठमासमाहात्म्यम्



॥ भाषाटीकया सहितम् ॥

प्रकाशक—भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, बनारस १.
ब्रांच—कचौड़ीगली, बनारस।

[मूल्य ३)